शुभम संदेश

एक राज्य - एक अखबार

रांची, धनबाद एवं पटना से प्रकाशित

www.lagatar.in | रांची, रविवार 26 मई 2024 ● ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष 03 संवत 2081 ● पृष्ठ : 12, मूल्य : ₹ 6 ● वर्ष : 2, अंक : 47 | आमंत्रण मूल्य : ₹ 3 मात्र

वोट करें देश गढ़ें

मौसम

शहर	अधिकतम	न्यूनतम
धनबाद	41.1	32.5
जमशेदपुर	38.2	27.2
डालटनगंज	42.4	27.6

तापमान डिग्री सेल्सियस में.

मोदी बोले- वोट के लिए 'मुजरा' कर रहा विपक्ष

भाषा। पटना/डेहरी/बक्सर।

▪ मोदी ने यह भी आरोप लगाया कि विपक्षी गठबंधन उन लोगों के समर्थन पर भरोसा कर रहा है जो वोट जिहाद में लिप्त हैं.

पीएम नरेंद्र मोदी ने विपक्षी गठबंधन इंडिया पर शनिवार को तीखा हमला किया और उस पर मुस्लिम वोट बैंक के लिए गुलामी और मुजरा करने का आरोप लगाया. बिहार के पाटलिपुत्र, काराकाट और बक्सर की अलग-अलग रैलियों में मोदी ने विपक्ष पर तीखा हमला किया और अल्पसंख्यक संस्थानों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पछड़ा वर्ग को आरक्षण से वंचित करने के लिए राजद और कांग्रेस जैसे दलों को जिम्मेदार ठहराया.

उन्होंने कहा, बिहार वह भूमि है जिसने सामाजिक न्याय की लड़ाई को एक नई दिशा दी है. मैं इस प्रदेश की भूमि पर यह घोषणा करना चाहता हूं कि मैं एससी, एसटी और ओबीसी के अधिकारों को लूटने और उन्हें मुसलमानों को देने की इंडिया गठबंधन की योजनाओं को विफल कर दूंगा. वे गुलाम बने रह सकते हैं और अपने वोट बैंक को खुश करने के लिए मुजरा कर सकते हैं. मोदी ने यह भी आरोप लगाया कि विपक्षी गठबंधन उन लोगों के समर्थन पर भरोसा कर रहा है जो वोट जिहाद में लिप्त हैं. साथ ही उन्होंने कलकत्ता हाईकोर्ट के आदेश का हवाला दिया, जिसमें कई मुस्लिम समूहों को ओबीसी की सूची में शामिल करने के पश्चिम बंगाल सरकार के फैसले को रद्द कर दिया गया है.

मोदी ने राजद प्रमुख लालू प्रसाद का नाम लिए बगैर कहा, एलईडी बल्ब के युग में वे लालटेन (राजद का चुनाव चिह्न) लेकर घूम रहे हैं, जिससे केवल उनका घर रोशन होता है और पूरे बिहार को अंधेरे में रखा जाता है. लालू प्रसाद की बड़ी बेटी मीसा भारती लगातार तीसरी बार पाटलिपुत्र से अपनी किस्मत आजमा रही हैं. उन्होंने कहा, भारत को एक ऐसे पीएम की जरूरत है, जो विश्व मंच पर भारत की ताकत के साथ न्याय कर सके. लेकिन ऐसा लगता है कि इंडिया गठबंधन शीर्ष पद के साथ म्यूजिकल चेयर खेलने पर आमादा है. चार जून शाम होते ही राजद वाले कहेंगे, ये कांग्रेस ने लुटिया डुबो दी. एक-दूसरे के कपड़े फाड़ना शुरू कर देंगे. दूसरी ओर हमारे लोग चार जून को मनेर के लड्डू बांटेंगे.

वार पलटवार

विपक्ष बोला : इन्हें डॉक्टर के पास ले चलो

भाषा। नयी दिल्ली

▪ प्रियंका गांधी ने कहा, परिवार का जो मुखिया होता है, उसमें हमेशा परिवार के सदस्यों की एक-दूसरे के प्रति आंखों की एक शर्म होती है.

पीएम नरेंद्र मोदी के मुजरा वाले बयान पर बवाल मच गया है. मोदी की टिप्पणी पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कांग्रेस नेता पवन खेड़ा ने कहा, मैंने पीएम के मुंह से मुजरा शब्द सुना. मोदी जी, ये कैसी मनःस्थिति है? आप कुछ लेते क्यों नहीं? अमित शाह और जेपी नड्डा जी को तुरंत उनका इलाज कराना चाहिए. शायद सूरज के नीचे भाषण देने से उनके दिमाग पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है.

कांग्रेस महासचिव प्रियंका गांधी ने कहा, मोदी जी आप देश के प्रधानमंत्री हैं, इतनी भी अपनी असलियत मत दिखाइए. आपने देश को अपना परिवार कहा है, देश आपके परिवार समान है. नसीहत भरे अंदाज में प्रियंका ने कहा, परिवार का जो मुखिया होता है, हमेशा परिवार के सदस्यों की एक-दूसरे के प्रति आंखों की एक शर्म होती है, वह नहीं खोनी चाहिए, मोदी जी बौखलाहट में आ गए हैं. इस तरह के शब्द उनके मुंह से नहीं निकलने चाहिए. वहीं, टीएमसी के सांसद साकेत गोखले ने भी कहा, नारी शक्ति से, आदमी अब मुजरा जैसे शब्दों का इस्तेमाल करने पर उतर आया है.

राजद के सांसद मनोज झा ने कहा- वह (मोदी) जो कह रहे हैं, उससे चिंतित हैं. मैं अब उनके बारे में चिंतित हूं. कल तक हम उनसे असहमत थे, अब हमें उनकी चिंता हो रही है. मैंने हाल ही में कहा था कि वह भव्यता के भ्रम का शिकार हो रहे हैं. मछली, मटन, मंगलसूत्र और मुजरा... क्या यह एक पीएम की भाषा है? मैं पहले प्रधानमंत्री से असहमत होता था. अब मुझे प्रधानमंत्री की चिंता हो रही है. वे मेरे देश के प्रधानमंत्री हैं, दुनिया में क्या सोचा जा रहा होगा कि मेरे देश के प्रधानमंत्री की राजनीतिक जुबान कैसी है. कौन-सी फिल्में देख-देख कर ये डायलॉग लिखे जा रहे हैं? अगर कोई ये कहने लगे कि मैं दैव्य रास्ते से आया हूं, मेरा जन्म बायोलॉजिकल तरीके से नहीं हुआ है, अगर हम और आप ये बात कहें तो लोग कहेंगे कि इसे डॉक्टर के पास ले चलो.

तीसरा चरण ▸ रांची, धनबाद, जमशेदपुर और गिरिडीह में शांतिपूर्ण रहा मतदान

लोकतंत्र का महापर्व

झारखंड में 63.27% वोट

कहां कितना प्रतिशत मतदान

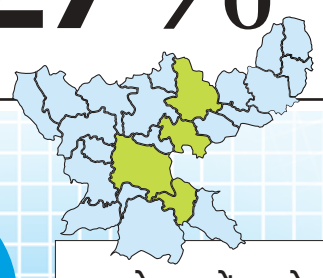

रांची	जमशेदपुर	धनबाद	गिरिडीह
61.56%	66.79%	59.20%	66.72%

जमशेदपुर में सबसे ज्यादा और धनबाद में सबसे कम मतदान

93 प्रत्याशियों का भाग्य ईवीएम में कैद

शुभम किशोर। रांची

लोकसभा चुनाव के छठे चरण में शनिवार को झारखंड के चार लोकसभा सीट रांची, धनबाद, जमशेदपुर और गिरिडीह में शांति पूर्ण मतदान हुए. इक्के-दुक्के बूथों को छोड़ दें, तो सभी मतदान केंद्रों पर सुबह सात बजे से वोटिंग शुरु हो गई थी. सुबह 6.30 बजे से ही लोग कतार में लगने शुरू हो गए थे. पहली बार वोट करने वाले युवा लोकतंत्र के इस महापर्व में भाग लेने के लिए उत्साहित दिखे. इस बार सुबह सात बजे से शाम पांच बजे तक मतदान का समय था. कुछ बूथों में मॉक पोल के दौरान ईवीएम में खराबी आ गई. जिससे मतदाताओं को वोट देने के लिए घंटों इंतजार करना पड़ा.

दोपहर तीन बजे तक झारखंड में औसत 54.34% अनुमानित मतदान रहा. मतदान खत्म होने के बाद चुनाव आयोग ने जानकारी दी है कि झारखंड में 63.27% मतदान हुआ है. इसके साथ ही देश के छठे व झारखंड के तीसरे चरण में चारों लोकसभा सीटों के लिए 93 प्रत्याशियों का भाग्य ईवीएम में कैद हो गया. चारों लोकसभा में बूथों पर 8963 बूथों पर 35852 मतदान कर्मियों की तैनाती की गई थी. साथ ही सुरक्षा के मद्देनजर सभी बूथों पर पुलिस बल की तैनाती की गई थी.

सुबह में हुई बंपर वोटिंग, दोपहर बाद बूथों पर कम दिखे मतदाता

आम से लेकर खास ने किया मतदान

झारखंड के राज्यपाल सीपी राधाकृष्णन ने सुबह-सुबह रांची के एटीआई स्थित मतदान केंद्र पर मतदान किया. मताधिकार का प्रयोग करने के बाद राज्यपाल सीपी राधाकृष्णन ने सेल्फी पॉइंट पर तस्वीर खिंचवाई. पूर्व सीएम और ओडिशा के राज्यपाल रघुवर दास ने जमशेदपुर के सीतारामडेरा मंडल क्षेत्र अधीन हरिजन मध्य विद्यालय, भालूबासा के 21 नंबर बूथ पर मतदान किया. इस दौरान रघुवर दास के पुत्र और परिवार के अन्य सदस्य भी मौजूद थे.रांची के राजकुमार महेंद्र सिंह धौनी ने दोपहर में अपने परिवार और मित्रों के साथ जेवीएम श्यामली स्कूल में वोट किया. धौनी की झलक पाने के लिए काफी संख्या में प्रशंसक पहुंचे हुए थे. कल्पना सोरेन ने रांची के संट फ्रांसिस स्कूल में निर्धारित पोलिंग बूथ पर अपना वोट डाला. वोट डालने के बाद कल्पना सोरेन ने मतदाताओं से अपील की कि वे बाहर आएं और लोकतंत्र और संविधान की रक्षा के लिए अपने मताधिकार का प्रयोग करें. रांची के बीजेपी प्रत्याशी संजय सेठ ने अपने परिवार के साथ ओटीसी के मतदान केंद्र और कांग्रेस प्रत्याशी यशस्विनी सहाय ने अपने पिता सुबोधकांत सहाय और परिवार के सदस्यों के साथ सेक्टर-तीन के निर्धारित मतदान केंद्र में अपने मत का प्रयोग किया. झारखंड के मुख्य निर्वाचन पदाधिकारी के रवि कुमार ने मॉडल उच्च विघालय, बीएमपी ग्राउंड डोरंडा के मतदान केन्द्र में सपरिवार मतदान किया. साथ ही चारों लोकसभा के प्रत्याशी, प्रशासनिक अधिकारियों ने भी अपना वोट दिया.

विधानसभावार अनुमानित वोटर टर्नआउट

रांची लोकसभा -	61.56%
हटिया -	55.00%
ईचागढ़ -	76.55%
कांके -	60.48%
खिजरी -	63.05%
रांची -	54.90%
सिल्ली -	65.34%
धनबाद लोकसभा -	59.20%
बोकारो -	49.50%
चंदनकियारी -	70.50%
धनबाद -	55.10%
झरिया -	54.53%
निरसा -	65.55%
सिंदरी -	69.20%
जमशेदपुर लोकसभा -	66.79%
बहरागोड़ा -	77.24%
घाटशिला -	72.16%
पूर्वी जमशेदपुर -	57.66%
पश्चिमी जमशेदपुर -	57.10%
जुगसलाई -	69.25%
पोटका -	73.12%
गिरिडीह लोकसभा -	66.72%
बाघमारा -	64.10%
बेरमो -	62.75%
डुमरी -	69.04%
गिरिडीह -	64.45%
गोमिया -	68.96%
टुंडी -	70.99%

नहीं डाल पाये वोट

रांची में मतदान के दौरान कई ऐसे मामले सामने आए, जहां मतदाता परेशान होकर वापस लौट गये. मध्य विद्यालय झखराटाड़ में पांच बूथ 26, 27, 28, 29 और 30 हैं. मतदाता ने बताया कि सुबह मतदाता सूची में नाम खोजते खोजते परेशान हो गये. उनके घर में छह लोग थे, लेकिन सूची में नाम नहीं मिला और घर वापस लौटना पड़ा. बूथ संख्या 292 में ईवीएम में परेशानी के बाद लोगों को घंटों इंतजार करना पड़ा, जिससे कई मतदाता लौट गये.

तीसरी आंख की नजर

झारखंड में 8963 मतदान केंद्र बनाये गये थे. जिसमें से 3361 शहरी व 5602 ग्रामीण क्षेत्र में मतदान केंद्र थे. इस बार सभी बूथ को मॉडल बूथ की तरह बनाया गया था. इनमें 15 बूथ को यूनिक बूथ थे. इसमें से 186 पॉलिन स्टेशन महिला के द्वारा संचालित थी. साथ ही 12 पोलिंग बूथ पर पीडब्ल्यूडी कर्मी और 22 पोलिंग बूथ यूथ के द्वारा संचालित किया गए. सभी मतदान केंद्रों से वेब कास्टिंग के जरिए चुनाव आयोग नजर बनाए हुए थे. हर बूथ पर दो 4डी कैमरे लगाये गये थे.

चुनाव आयोग ने दिया एक-एक वोट का हिसाब!

आंकड़े जारी कर कहा- डेटा में बदलाव नामुमकिन है

एजेंसी। नयी दिल्ली

लोकसभा चुनाव के छठे चरण के लिए शनिवार को देश की 58 सीटों पर वोटिंग के बीच चुनाव आयोग ने पिछले पांच फेज में हुए चुनाव का फाइनल डेटा जारी किया है. इसमें यह बताया गया है कि इन पांचों फेज में किस लोकसभा क्षेत्र में कितने फीसदी लोगों ने वोट डाला है. इस दौरान चुनाव आयोग की ओर से यह भी कहा गया कि वोट फीसदी को लेकर कुछ गलत नैरेटिव भी फैलाए गए हैं. आयोग ने कहा कि चुनावी प्रक्रिया को खराब करने के उद्देश्य से इस तरह के गलत नैरेटिव फैलाए जाते हैं. ईसीआई के मुताबिक मतदान का डेटा हर चरण के चुनाव के दिन सुबह 9.30 बजे से उनके ऐप के माध्यम से उपलब्ध होता है. चुनाव आयोग ने प्रेस रिलीज जारी कर वोट पोलिंग फीसदी में किसी भी तरह का बदलाव होने से इनकार किया है.

किस चरण में कितना मतदान

पहला चरण
कुल वोटर : 166386344
मतदान किया: 110052103
मत प्रतिशत: 66.14%

दूसरा चरण
कुल वोटर 158645484
मतदान किया: 105830572
मत प्रतिशत: 66.71%

तीसरा चरण
कुल वोटर 172404907
मतदान किया: 113234676
मतदान प्रतिशत: 65.68%

चौथा चरण
कुल वोटर 177075629
मतदान किया: 122469319
मत प्रतिशत: 69.16%

पांचवां चरण
कुल वोटर 89567973
मतदान किया: 55710618
मतदान प्रतिशत: 62.20%

लोकसभा चुनाव : बंगाल में सबसे अधिक और कश्मीर में सबसे कम वोट

छठे चरण में 58 सीटों पर 60% मतदान

एजेंसी। नयी दिल्ली

लोकसभा चुनाव के छटे चरण की वोटिंग भी शनिवार की शाम संपन्न हो गई. छठे चरण में करीब 60 फीसदी मतदान हुआ है. ये भी 2019 के 64.22 प्रतिशत के मुकाबले करीब पांच फीसदी कम 60 फीसदी मतदान खबर है. कम है. इस बार जम्मू कश्मीर में सबसे कम 52.28 प्रतिशत और पश्चिम बंगाल में सबसे अधिक 78.19 फीसदी मतदान हुआ है. इस चरण में झारखंड की चार, बिहार-बंगाल की 8-8, हरियाणा की सभी 10, दिल्ली की सभी सात, जम्मू-कश्मीर की एक सीट और ओडिशा की छह सीटों पर मतदान कराया गया. इसके अलावा उत्तर प्रदेश की 14 सीटों के लिए वोट डाले गये. इस चरण में आठ प्रदेशों की 58 सीटों पर 889 उम्मीदवार चुनाव मैदान में हैं. इन सभी की किस्मत ईवीएम में कैद हो चुकी है. उधर, सत्तारूढ़ दल एनडीए ने दावा किया गया कि वह मोदी के नेतृत्व में हैट्रिक लगाने जा रहा है. वहीं इंडिया गठबंधन ने कहा कि छठे चरण के बाद अब पक्का हो गया है कि देश की सत्ता बदलने जा रही है. मतगणना चार जून को होगी. इसके पहले एक जून को चुनाव के सातवां और अंतिम चरण का मतदान होना है.

राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू, कांग्रेस की पूर्व अध्यक्ष सोनिया गांधी, राहुल गांधी, प्रियंका गांधी, मेनका गांधी, धर्मेंद्र प्रधान, राजबब्बर, दीपेंद्र हुड्डा, मनोहर खट्टर समेत दर्जनों वीवीआईपी लोगों ने इस चरण में अपने मताधिकार का प्रयोग किया. प्रधान न्यायाधीश डीवाई चंद्रचूड़ ने भी दिल्ली में मतदान किया.

उधर, बंगाल की झारग्राम सीट से भाजपा उम्मीदवार प्रणत टुडु पर हमला हुआ है. भाजपा उम्मीदवार मोंगलापोटा के बूथ नंबर 200 पर पहुंचे थे, इसी दौरान उपद्रवियों ने उन पर हमला कर दिया और पथराव किया. किसी तरह सुरक्षाकर्मियों ने भाजपा उम्मीदवार को बचाया. हालांकि हमले में भाजपा उम्मीदवार घायल हुए हैं, लेकिन खतरे से बाहर बताये गये हैं.

इस चरण में कम पड़ा वोट

प्रदेश	2019 में वोट %	2024 में वोट %
बिहार	58.65	54.68
दिल्ली	60.6	55.93
हरियाणा	70.34	59.28
जम्मू-कश्मीर	8.98	52.92
झारखंड	64.57	63.27
ओडिशा	71.61	60.64
उत्तर प्रदेश	54.58	54.03
पश्चिम बंगाल	84.59	78.20

बड़ी उम्मीद से राजनीतिक दलों का थामा था दामन, पर तवज्जो नहीं मिली, अब विधानसभा चुनाव में टिकट के लिए करेंगे लॉबिंग

दिल्ली के सफर में पीछे छूट गये दर्जन भर से अधिक आईएएस और आईपीएस

प्रमुख संवाददाता। रांची

राज्य के आईएएस और आईपीएस राजनीति में अपना जलवा नहीं दिखा पाए. लोकसभा चुनाव अब समाप्ति की ओर है. बड़ी उम्मीद से दर्जन भर से अधिक आईएएस-आईपीएस के साथ झारखंड प्रशासनिक सेवा और झारखंड पुलिस सेवा के अफसरों ने अलग-अलग राजनीतिक दलों का दामन थामा था, लेकिन दिल्ली के सफर में पीछे छूट गये. लेकिन अब विधानसभा चुनाव में उम्मीद बची है कि टिकट मिल जाए. फिलहाल आईपीएस रामेश्वर उरांव राज्य सरकार में कैबिनेट मंत्री हैं. आईपीएस बीडी राम पलामू से भाजपा के सांसद रहे हैं. इस बार फिर से चुनावी समर में है. चार जून को इनकी किस्मत का फैसला होगा. राज्य सेवा के अफसर सुखदेव भगत का भी फैसला चार जून को जनता सुनाएगी, वहीं राज्य सेवा के अफसर लंबोदर महतो गोमिया से विधायक हैं.

लोकसभा चुनाव के टिकट बंटवारे में आईपीएस अफसरों को नहीं मिली तवज्जो

इस बार लोकसभा चुनाव में छह आईपीएस अफसरों को तवज्जो नहीं मिली. हालांकि ये अपने दल में सक्रिय भी रहे. इनमें पूर्व डीजीपी डीके पांडेय (भाजपा), आईपीएस डॉ अजय कुमार (कांग्रेस), आईपीएस अरुण उरांव (भाजपा), आईपीएस रेजी डुंगडुंग (झापा), आईपीएस सुबोध प्रसाद वर्मा (आजसू), आईपीएस राजीव रंजन (भाजपा) और पूर्व डीजीपी राजीव कुमार शामिल हैं. इनमें से पूर्व डीजीपी राजीव कुमार अन्य सभी के मुकाबले उतने सक्रिय नहीं रहे.

ये आईएएस हो गए साइडलाइन

काफी तामझाम ने कई आईएएस अफसरों ने भी विभिन्न राजनीतिक दलों का दामन थामा था. लेकिन इन्हें भी किसी दल ने तवज्जो नहीं दी. इनमें भाजपा के जेबी तुबिद, जदयू की रेणु गोपीनाथ, भाजपा की सुचित्रा सिन्हा, आईएएस ब्रजमोहन कुमार,आईएएस विजय कुमार सिंह (भाजपा) के नाम शामिल हैं. वहीं राज्य प्रशासनिक सेवा के अफसर सुधीर वर्मा भी भाजपा के हो लिए थे. इसके अलावा झारखंड पुलिस सेवा के अफसर ललन ठाकुर ने भी टिकट की उम्मीद में भाजपा का दामन थामा था, लेकिन इन्हें भी तवज्जो नहीं मिली.

पहले कुछ को मौका भी मिला था, लेकिन जनता ने नकार दिया

पहले के चुनावों में कुछ को मौका भी मिला, पर जनता ने ठुकरा दिया. पूर्व गृह सचिव जेबी तुबिद, आईपीएस रहे लक्ष्मण प्रसाद सिंह जैसे कई नाम हैं, जिन्हें दो-दो बार मौका मिला, लेकिन सफल नहीं हो सके. पूर्व डीजीपी डीके पांडे, अरुण उरांव सरीखे अधिकारियों को तो मौका ही नहीं मिला. डॉ अजय कुमार को एक बार मौका मिला. सफलता भी हासिल की. इसके बाद पार्टी ने उन्हें मौका नहीं दिया. फिलहाल वे भी अपनी राजनीतिक जमीन तलाश रहे हैं.

राशिफल

आचार्य प्रणव मिश्रा

मेष सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ेगी. कोई डूबा धन मिलने का योग है. धन प्राप्ति सुगम होगी. वरिष्ठजनों का सहयोग मिलेगा. नवीन योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए दिन अच्छा होने की संभावना है. परिवार में मेल-मिलाप बढ़ेगा.

वृषभ कम बोलने का प्रयास करें. पर रुके कार्यों में गति आएगी. घर-बाहर प्रसन्नता रहेगी. माता के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना आवश्यक. पुराने रुके कामों, लेनदेन में सफलता की संभावना है. विद्यार्थियों को शिक्षा में सफलता मिलेगी.

मिथुन आय में वृद्धि हो सकता है. बस प्रयास बढ़ा दें. साथ ही लाभ के अवसर मिलेंगे. व्यवसाय ठीक चलेगा. प्रसन्नता रहेगी. राज्य एवं व्यवसाय के क्षेत्र में विशेष लाभ का योग है. आर्थिक उन्नति होगी.

कर्क पेट मे कोई कष्ट हो सकता है. लेन-देन में सावधानी रखें. जोखिम व जमानत के कार्य बिलकुल न करें. संतान की गतिविधियों पर नजर रखनी होगी. कामकाज का बोझ बढ़ने से व्यापार पर विपरीत असर हो सकता है.

सिंह यात्रा का योग है. यात्रा से मन में प्रसन्नता रहेगी. धनार्जन होगा. सोच-समझकर कार्य करना लाभप्रद रहेगा. पुरुषार्थ सफल होगा. वाहन चलाते समय सावधानी रखनी चाहिए. व्यापार में नवीन प्रस्ताव मिलेंगे.

कन्या माता से विवाद हो सकता है. वाणी पर नियंत्रण रखें. आत्मसम्मान बना रहेगा. सामाजिक कार्यों में सक्रिय भागीदारी निभा सकेंगे. पारिवारिक सुख-शांति बरकरार रहेगी. जोखिम के कार्यों से दूर रहें. सूर्य को जल दें.

तुला मान-सम्मान मिलेगा. धनार्जन होगा. प्रसन्नता रहेगी. पारिवारिक सुख एवं पत्नी के सहयोग से मन प्रसन्न रहेगा. आर्थिक स्थिति अच्छी रहेगी. किसी से बहस न करें. काम-धंधे में सफलता के शुभ संकेत हैं. गौ सेवा करें.

वृश्चिक किसी परिचित को हानि हो सकती है. दुःखद समाचार मिल सकता है. दौड़धूप अधिक होगी. वाणी पर संयम रखें. विरोधियों से सावधान रहें. परिवार की परेशानी का हल संभव है. भागीदारी के कामों में सफलता मिलेगी.

धनु मानसिक और शारीरिक सुख में वृद्धि होगी. बौद्धिक कार्य सफल रहेंगे. प्रसन्नता रहेगी. स्वास्थ्य की ओर ध्यान दें. अधूरे काम समय से पूरे होने के योग हैं. नए कार्यों से लाभ के मार्ग प्रशस्त होंगे. धन का संग्रह होगा.

मकर उन्नति के मार्ग प्रशस्त होंगे. व्यवसाय ठीक चलेगा. संतान की प्रगति होगी. व्यापार-व्यवसाय में प्रगतिकारक वातावरण का सृजन होगा. पारिवारिक स्थिति आनंददायक रहेगी. मन प्रफुल्लित रहेगा. हनुमान चालीसा का पाठ करें.

कुंभ आय के लिए किया गया प्रयास सफल होगा. पुराने दोस्त के मिलने से मन प्रसन्न रहेगा. संतान के संबंध में संतोष रहेगा. व्यावसायिक अथवा आजीविका संबंधी समस्या का समाधान हो सकेगा. पुरुषार्थ का पूर्ण फल मिलेगा.

मीन समय अच्छा है. सरकारी कार्य मे गति मिलेगी. शेयर बाजार से लाभ होगा, पर खर्च का बोझ बढ़ेगा. किसी पर अत्यधिक भरोसा न करें. व्यापार, नौकरी में अड़चनें आने से मनोबल में कमी आ सकती है. गुरुमंत्र का जप करें.

आरोपों-विवादों से गहरा नाता रहा झारखंड कैडर के आईएफएस अफसरों का

वन विभाग में भी 200 करोड़ रुपये से अधिक का घाटोला!

रवि भारती। रांची

झारखंड कैडर के आईएएस अफसर ही नहीं बल्कि आईएफएस अफसर भी आरोपों और विवादों से जुदा नहीं हैं. कई अफसरों पर गंभीर आरोप हैं. लेकिन कार्रवाई के नाम पर सिर्फ लीपापोती ही हो रही है. सूत्रों को अनुसार, इन अफसरों पर 200 करोड़ से अधिक की वित्तीय अनियमितता की है. यही नहीं एक अफसर वी जयराम को राज्य सरकार ने फरार तक घोषित कर दिया था. लेकिन वह मामला भी ठंडे बस्ते में चला गया.

एक दर्जन से अधिक आईएफएस अफसरों के खिलाफ लंबित हैं मामले

कैंपा फंड में घोटाला से लेकर तस्करी तक के आरोप

वन विभाग के अफसरों पर कैंपा फंड घोटला से लेकर जानवरों की तस्करी तक के आरोप हैं। अफसरों पर प्रमुख रूप से हाथी दांत और जानवरों की खाल की तस्करी में सहयोग करने, अवैध आरा मिल को लाइसेंस देने, जंगल की जमीन बेचन, कैंपा फंड में घोटाला करने, एफडीए में सरकारी राशि का गबन,सोलर लैंप में घोटाला, सागवान-खैर की लकड़ी बेचने जैसे गंभीर आरोप हैं.

इन अफसरों पर लगे हैं गंभीर आरोप

कैसे -कैसे आरोप लगे हैं

धीरेंद्र कुमार : झारक्राफ्ट के पूर्व एमडी : हाथी दांत तस्करी का आरोप
प्रदीप कुमार : पूर्व पीसीसीएफ- मांस खरीद में अनियमितता का आरोप
सीपी खंडूजा : अवैध आरा मिल को लाइसेंस देने का आरोप
प्रदीप कुमार : जंगल की जमीन बेचने का आरोप
बीएन द्विवेदी : राशि गबन का आरोप
आरके सिन्हा : राशि गबन का आरोप
सत्यजीत सिंह : सागवान और खैर की लकड़ी बेचने का आरोप
केएन ठाकुर : सरकारी वाहन बेचने का आरोप
कुमार आशुतोष : एफडीए में सरकारी राशि के गबन का आरोप
अजीत कुमार सिंह : कैंपा फंड में घोटाला का आरोप
रवि रंजन : सरकारी राशि के गबन का आरोप

ऐसी है वन विभाग के घोटालों की फेहरिस्त

लातेहार सामाजिक वानिकी प्रक्षेत्र : बांस गैबियन लगाने में 75 लाख रुपये का गबन.

जामताड़ा वन प्रमंडल : कुआं, तालाब और पौधारोपण के नाम पर तीन करोड़ की हेराफेरी.

दुमका विश्व खाद्य प्रमंडल : नकद भुगतान के नाम पर तीन करोड़ रुपये की फर्जी निकासी.

साहेबगंज वन प्रमंडल : 50 लाख पौधे के नाम पर 50 लाख रुपये का गबन.

बोकारो वन प्रमंडल : पौधारोपण के नाम पर 50 लाख रुपये का गबन.

पाटन वन क्षेत्र : पौधारोपण में चार लाख रुपये की अनियमितता.

डालटनगंज वन रोपण प्रमंडल : सड़क किनारे पौधरोपण के नाम पर 10 लाख रुपये की हेराफेरी.

हजारीबाग वन्य प्राणी प्रमंडल : मिट्टी खरीद के नाम पर 50 लाख रुपये का गबन.

गुमला वन प्रमंडल : पौधारोपण के नाम पर 3 करोड़ रुपये राशि की निकासी.

हजारीबाग नेशनल पार्क : मनरेगा के तहत 10 किलोमीटर में बांस गैबियन लगाना था, एक भी नहीं लगा. 50 लाख रुपये की अनियमितता

इन अफसरों पर भी हैं गंभीर आरोप

बीसी निगम
सर्वेश सिंगल
महेंद्र कदर्म
पीसी मिश्र
अरविंद कुमार
नरेंद्र मिश्र
एके प्रभाकर
बलराम खालखो
शिवाशीष राम
वी जयराम

बिहार सरकार ने भी मांगी थी अभियोजन की स्वीकृति

बिहार सरकार ने झारखंड कैडर के तीन आईएफएस अफसरों के खिलाफ अभियोजन की स्वीकृति मांगी थी. इसके बावजूद राज्य सरकार ने अभियोजन की स्वीकृति नहीं दी. एकीकृत बिहार के समय इन अफसरों पर कई गंभीर आरोप थे. इन अफसरों में बीसी निगम, सर्वेश सिंघल और महेंद्र कर्दम शामिल हैं. इस मामले को भी ठंडे बस्ते में डाल दिया गया.

पांच साल में झारखंड के 555 गजराजों ने ले ली 500 लोगों की जान

प्रमुख संवाददाता। रांची

झारखंड में अब सिर्फ 555 हाथी ही बचे हैं, जो देश के जंगली हाथियों की कुल संख्या के सिर्फ 11 फीसदी ही हैं. इन हाथियों ने पिछले पांच साल में 500 लोगों की जान ली है. जंगली हाथियों ने शनिवार को पूर्वी सिंहभूम में 65 साल के सुरेंद्रनाथ हांसदा को पटक-पटक कर मार डाला. इसकी वजह यह है कि राज्य में अब तक एलिफेंट कॉरिडोर नहीं बन पाया है. वहीं विभिन्न कारणों से राज्य में अब तक 55 हाथियों की भी मौत हो चुकी है.

क्या कहती है डब्ल्यूटीआई की रिपोर्ट : डब्ल्यूटीआई (वाइल्डलाइफ ट्रस्ट ऑफ इंडिया) की रिपोर्ट के अनुसार झारखंड,ओडिशा, छत्तीसगढ़ और दक्षिण पश्चिम बंगाल के 21 हजार वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में हाथियों का भ्रमण होता है. मानव-हाथी संघर्ष के चलते देशभर में जितने लोगों की जान जाती है, उनमें से 45 फीसदी इसी इलाके से हैं. आंकड़े के मुताबिक देश में जंगली हाथियों की कुल संख्या के 11 प्रतिशत हाथी झारखंड में हैं.

सबसे अधिक झारखंड में हाथियों ने ली है जान : केंद्रीय वन मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार सबसे अधिक हाथी व मानव संघर्ष झारखंड में ही हुआ है. झारखंड में हाथियों ने पिछले पांच साल में 500 लोगों की जान ली है. पड़ोसी राज्य ओडिशा में 499, असम में 385 और पश्चिम बंगाल में 358 लोगों ने हाथियों के हमले में जान गंवायी है.

55 हाथियों की भी हो चुकी है मौत : वन विभाग के आंकड़े के मुताबिक झारखंड में अब तक 55 हाथियों की भी मौत हो चुकी है. बिजली के करंट की चपेट में आने से अब तक 25 हाथियों की मौत हुई है, जबकि शेष हाथियों की मौत रेलवे ट्रैक पर ट्रेनों की चपेट में आने और तस्करों की वजह से हुई है.

हाथियों के खौफ से राजधानी में लग चुकी है धारा 144 : राजधानी रांची के इटकी प्रखंड और आसपास के इलाकों में हाथियों के खौफ से धारा 144 लगानी पड़ी थी. उस वक्त वन संरक्षक की अध्यक्षता में चार मंडलों में वन अधिकारियों की एक समिति बनाई थी, जो इस बात की जांच कर रही थी कि झुंड से बिछड़ा एक हाथी अचानक इतना उग्र क्यों हो गया? लेकिन अब तक यह रिपोर्ट भी पूरी तरह से तैयार नहीं हो पाई है. दरअसल हाथियों के गुस्से की वजहें जानने के लिए पिछले तीन-चार दशकों में कई अध्ययन और शोध हुए हैं और इन सभी के निष्कर्ष में यह बात समान रूप से सामने आई है कि मानवीय गतिविधियों ने हाथियों के प्राकृतिक अधिवास और उनके आने-जाने के परंपरागत रास्तों यानी कॉरिडोर को लगातार डिस्टर्ब किया है.

सर्ड स्थित मतदान केंद्र में वोटरों का स्वागत ढोल बाजे के साथ किया गया

रांची। सर्ड स्थित मतदान केंद्र में वोटरों का स्वागत माला पहनकर किया गया. ढोल बाजे के साथ वोटरों को उनके बूथ तक ले जाया गया. वोटिंग से पहले इस तरह का स्वागत देखकर होटल भी उत्साहित नजर आए. बूथ के बाहर लोगों की लंबी लाइन लगी थी. सभी अपनी बारी आने का इंतजार कर रहे थे.

एसएसपी ने जवाहर नगर में लगवाया टेंट

रांची। राजधानी में मतदान के लिए सुबह से लोग लाइन में लगे थे. तेज धूप होने के कारण रांची के जवाहरनगर के बूथ नं 340 में लोग लाइन में लगे थे. धूप बर्दास्त नहीं कर पाने के कारण स्थानीय लोगों ने एसएसपी चंदन कुमार सिन्हा को कॉल कर टेंट लगवाने का आग्रह किया, तो उन्होंने पुलिस लाइन से टेंट मंगवा कर लगवाया, ताकि लोगों को राहत मिले.

आईएएस मनीष रंजन को ईडी ने फिर भेजा समन, 28 मई को बुलाया

संवाददाता। रांची

आईएएस मनीष रंजन को ईडी ने दोबारा समन भेजकर 28 मई को उपस्थित होने को कहा है. इससे पहले झारखंड सरकार के ग्रामीण विकास विभाग के पूर्व सचिव व वर्तमान में राजस्व व भवन निर्माण विभाग के सचिव मनीष रंजन शुक्रवार को ईडी कार्यालय नहीं पहुंचे थे. उन्हें दिन के 11 बजे ईडी ऑफिस में उपस्थित होना था, लेकिन इससे पहले राजस्व विभाग के एक कर्मचारी को विशेष दूत के तौर पर भेजकर मनीष रंजन ने तीन सप्ताह के समय की मांग की थी. उन्होंने ईडी को इस संबंध में एक पत्र भेजा था. मनीष का पत्र मिलने के बाद ईडी ने दिल्ली मुख्यालय को जानकारी दी थी. ईडी ने इस मामले में तीन सप्ताह का वक्त नहीं देने का फैसला लिया था. इसलिए ईडी ने मामले में दूसरा समन जारी किया.

- सरकारी ठेकों में कमीशन लेने का है आरोप

प्रधानमंत्री के कार्यक्रम का हवाला देकर तीन सप्ताह का समय मांगा था रंजन ने

विशेष दूत के माध्यम से भेजे गए पत्र में मनीष रंजन ने कहा था कि राज्य में चुनाव को लेकर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के चुनावी दौरे हो रहे हैं. प्रस्तावित चुनावी दौरों में सुरक्षा व्यवस्था व प्रोटोकॉल की जिम्मेदारी उनकी है. ऐसे में उन्हें तीन हफ्ते का वक्त चाहिए. आगे उन्होंने लिखा है कि पूर्व में प्रधानमंत्री के धनबाद दौरे में सुरक्षा संबंधी गलतियां हुई थीं. इस मामले में भी वह रिपोर्ट तैयार कर रहे हैं. ईडी ने मनीष से उनके और उनके आश्रितों के बैंक खातों, चल-अचल संपत्तियों का विवरण भी मांगा था. यह जानकारी जुटाने के लिए भी मनीष ने वक्त की मांग की थी.

सीआईडी के रांची साइबर थाने में पीड़ित ने दर्ज करायी थी ठगी की शिकायत

96 लाख की ठगी, कोलकाता, ठाणे और रांची से तीन साइबर अपराधी गिरफ्तार

- अपराधियों के पास से छह मोबाइल, छह सिम सहित कई अन्य सामान भी बरामद

संवाददाता। रांची

सीआईडी ने 96.02 लाख की ठगी करने के आरोपी तीन साइबर अपराधियों को गिरफ्तार कर लिया है. सीआईडी के साइबर सेल ने शनिवार को कार्रवाई करते हुए कोलकाता, ठाणे और रांची से तीनों साइबर अपराधियों को धर दबोचा, जिनमें पाल प्रदीप मनीराम, अजय कुमार और एक महिला साइबर अपराधी शामिल है. इनके पास से छह मोबाइल, छह सिम कार्ड समेत कई अन्य सामान बरामद किया गया है. सीआईडी के रांची साइबर क्राइम थाना में पीड़ित संजीव कुमार के लिखित आवेदन पर प्राथमिकी (कांड संख्या 135/2024) दर्ज कीगयी थी. दर्ज करायी गयी शिकायत में पीड़ित ने जानकारी दी थी कि कि साइबर अपराधी ने उनसे वाट्सएप के माध्यम से संपर्क किया था और रुपये निवेश करने का प्रलोभन दिया. पीड़ित के अनुसार उनके वाट्स ऐप पर लिंक https:/poemsvip.vip भेजा गया था, जिसके जरिए निवेश करने पर रुपये 10 गुणा ज्यादा करने का प्रलोभन दिया गया था.

वाट्सएप पर भेजे गये लिंक के माध्यम से निवेश कराने के लिए पीड़ित को विभिन्न बैंक खाताओं में पैसे डालने को कहा गया था. पीड़ित ने 96.2 लाख रु जमा कराया. मामले की जांच में पुलिस को पता चला कि पीड़ित को भेजा गया Website https:/poemsvip.vip फर्जी है. जिसका आईपी एड्रेस अलीबाबा क्लाउड चायना है. घटना में उपयोग कॉरपोरेट अकाउंट के ट्रांजेक्शन के आईपी का सर्वर जापान, हॉन्गकॉन्ग में पाया गया. आरोपी के पास से इस्तेमाल किए गये 15 अलग-अलग बैंक खातों के कॉपोरेट इंटरनेट बैंकिंग सहित कई आपत्तिजनक सबूत पुलिस को मिले हैं.

रहें अलर्ट 31 मई तक बारिश की संभावना, 40 से 50 किमी प्रति घंटे की रफ्तार से चलेगी हवा

आज से दिखेगा चक्रवाती तूफान 'रेमल' का असर

प्रमुख संवाददाता। रांची

झारखंड में 26 मई यानी रविवार से चक्रवाती तूफान 'रेमल' का असर दिखेगा. मौसम केंद्र के अनुसार, 26 व 27 मई तक राज्य के पूर्वी, दक्षिणी व मध्य भागों में कुछ स्थानों पर गर्जन के साथ हल्की से मध्यम दर्जे की बारिश होने की संभावना है. तेज हवा का झोंका चलने के साथ वज्रपात की भी आशंका जताई गई है. इस दौरान हवा की गति 40 से 50 किलोमीटर प्रति घंटा होने की संभावना है. इसका असर गढ़वा, पलामू, चतरा, लातेहार, पूर्वी सिंहभूम, पश्चिमी सिंहभूम, सिमडेगा, सरायकेला-खरसावां, रांची, बोकारो, गुमला, हजारीबाग, खूंटी, रामगढ़ जिले में देखने को मिलेगा.

कुछ स्थानों पर गर्जन के साथ वज्रपात की भी आशंका

दो-तीन दिनों में तीन से पांच डिग्री तक गिरेगा तापमान

आंधी, बारिश, वज्रपात के साथ चलेगी तेज हवा

राज्य में 26 मई से आंधी चलेगी. इसके साथ वज्रपात भी होगा. इसका असर राज्य के कई जिलों में पड़ेगा. राज्य के पूर्वी भाग में 28 मई को कहीं-कहीं गर्जन और तेज हवा का झोंका चलने के साथ वज्रपात संभव है. इस दौरान हवा की गति 30 से 40 किलोमीटर प्रति घंटा होने की संभावना है. इसका असर गढ़वा, पलामू, चतरा, लातेहार जिलों में देखने को मिलेगा. 28 से 31 मई तक राज्य के पूर्वी भागों में कहीं-कहीं गर्जन के साथ हल्की बारिश होने की संभावना है. इसका असर गढ़वा, पलामू, चतरा, लातेहार जिले में पड़ने की उम्मीद है. बहरहाल, झारखंड में 31 मई तक बारिश होती रहेगी.

तापमान में आएगी गिरावट

राज्य में अगले 24 घंटे के दौरान अधिकतम तापमान में कोई बड़े बदलाव की संभावना नहीं है. इसके बाद अगले दो से तीन दिनों में तीन से पांच डिग्री सेल्सियस की गिरावट होने की संभावना है. मौसम केंद्र के अनुसार, बंगाल की खाड़ी में बना निम्न दबाव 26 मई की सुबह तक चक्रवाती तूफान में तब्दील हो जायेगा. यह उत्तर-पूर्वी दिशा में आगे बढ़ रहा है. 26 मई की मध्य रात्रि से यह तूफान 110 से 135 किमी प्रति घंटा की रफ्तार वाले तूफान में बदल जाएगा.

कांग्रेस नेताओं का दावा, चारों सीटों पर इंडिया गठबंधन भारी

रांची। झारखंड की चार सीटों रांची, जमशेदपुर, धनबाद और गिरिडीह में हुए मतदान के बाद झारखंड प्रदेश कांग्रेस के वरिष्ठ नेता आलोक कुमार दुबे, लाल किशोर नाथ शाहदेव और डॉ राजेश गुप्ता छोटू ने दावा किया है कि चारो सीटों पर इंडिया गठबंधन प्रत्याशी की जीत होगी. मतदाताओं का भारी समर्थन और आशीर्वाद इंडिया गठबंधन के प्रत्याशी को मिला है. मतदान को लेकर जैसा रुझान मतदाताओं में देखने को मिला है, उससे हम यह कह सकते हैं कि देश के अन्य राज्यों की तरह झारखंड की चार सीटों के लिए शनिवार को हुए मतदान के बाद इंडिया गठबंधन प्रचंड बहुमत से विजयी हो रहा है. कांग्रेस नेता आलोक कुमार दुबे ने कहा कि भाजपा का देश और झारखंड से पूरी तरह से सफाया होने जा रहा है.

क्लासिफाइड

राज्यभर की खबरों के लिए स्कैन करें

शुभम संदेश

एक राज्य - एक अखबार

www.lagatar.in www.lagatar.in जमशेदपुर, रविवार 26 मई 2024 ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष 03 संवत 2081 पृष्ठ : 12, मूल्य : ₹ 6 वर्ष : 2, अंक : 47 आमंत्रण मूल्य : ₹ 3 मात्र

64.30 % मतदान, वर्ष 2019 की तुलना में इस बार 3.11 प्रतिशत कम रहा वोटिंग का ग्राफ

सुबह में मतदाता मस्त, दोपहर बाद पस्त

जमशेदपुर में मतदान शुरू होने से पूर्व ही पोलिंग बूथ पर वोटिंग शुरू होने के इंतजार में कतार में खड़े उत्साहित पुरुष व महिला मतदाता.

व्हील चेयर पर वोट देने पहुंची वृद्ध महिला.

टाटा स्टील के एमडी टीवी नरेन्द्रन एवं उनकी पत्नी रूचि नरेन्द्रन

वोट डालने के लिए कतार में खड़े ओडिशा के राज्यपाल रघुवर दास.

शुभम संदेश टीम । जमशेदपुर

जमशेदपुर संसदीय क्षेत्र में कुछ बूथों पर छिटपुट घटनाओं को छोड़ कर सभी सभी जगह मतदान शांतिपूर्ण रहा. शहर व ग्रामीण क्षेत्रों में सुबह 7:00 बजे मतदान शुरू होने से पहले ही मतदाता पहुंचने लगे थे. कहीं-कहीं तो कतारबद्ध होकर बैठे भी देखे गये. 38.3 डिग्री तापमान, चिलचिलाती धूप व उमस भरी गर्मी में भी युवा से लेकर बुजुर्ग व दिव्यांग-लाचार मतदाताओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया. बावजूद इस बार मतदान का प्रतिशत पिछले वर्ष 2019 में हुए लोकसभा चुनाव के आंकड़े से कम रहा. सुबह जिस तरह का उत्साह व बूथों पर हर वर्ग के मतदाताओं की लंबी-लंबी कतारें रहीं, वह दोपहर बाद धीरे-धीरे सिमटती चली गयीं. इस तरह दोपहर के बाद मतदान का प्रतिशत भी कम होता चला गया.

इस बार जिले में शाम पांच बजे तक 64.30 प्रतिशत मतदाताओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया. हालांकि शाम 5:00 बजे तक बूथों पर पहुंचे मतदाताओं की वोटिंग जारी ती. अतः मतदान प्रतिशत बढ़ने की भी उम्मीद है. बावजूद शाम 5:00 तक मिले आंकड़े को देखा जाये, तो वर्ष 2019 के आम चुनाव में जिले में 3.11 प्रतिशत अधिक 67.19 प्रतिशत मतदान हुआ था. यह अबतक वर्ष 2009 से 2019 तक हुए चार आम चुनावों में सर्वाधिक मतदान प्रतिशत रहा था. इसमें वर्ष 2011 का लोकसभा उप चुनाव भी शामिल है.

जिले में सबसे अधिक पोटका विस में मतदान : जिला निर्वाचन पदाधिकारी अनन्य मित्तल ने बताया कि शाम 5:00 बजे तक जिले में जो मतदान प्रतिशत दर्ज किया गया है, उसमें सबसे अधिक पोटका विधानसभा क्षेत्र में 70.7 % मतदान हुआ है. 70.25 प्रतिशत के साथ दूसरे नंबर पर बहरागोड़ा विधानसभा क्षेत्र रहा है. तीसरे स्थान पर घाटशिला विधानसभा क्षेत्र (68.16 %), चौथे स्थान पर जुगसलाई विधानसभा क्षेत्र (67.59 %) और पांचवें स्थान पर जमशेदपुर पूर्वी विधानसभा क्षेत्र (56.66 %) रहा है. वहीं सबसे निचले यानी छठे स्थान पर जमशेदपुर पश्चिमी विधानसभा क्षेत्र (56.34 %) रहा है, जहां जिले के सभी छह विधानसभा क्षेत्रों को देखा जाये, तो सबसे कम मतदान हुआ है.

जमशेदपुर पूर्वी विधानसभा क्षेत्र के मोहरदा स्थित बूथ संख्या 103 में वोटर स्लिप में प्रधानमंत्री की तस्वीर और भाजपा का चुनाव चिन्ह का इस्तेमाल होने पर आचार संहिता का मामला दर्ज किया गया.

घाटशिला के उत्क्रमित मध्य विद्यालय छोड़िया में दोपहर 12 बजे तक एक भी वोट नहीं पड़ा : उत्क्रमित मध्य विद्यालय छोड़िया में दिन के 12 बजे तक एक भी वोट नहीं पड़ा 12 के बाद प्रशासन के द्वारा ग्रामीणों को समझाने के पश्चात एक व्यक्ति कार्तिक सिंह सरदार ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया. घाटशिला अनुमंडल के डीसीएलआर नील निखिल सुरीन के प्रयास से एक व्यक्ति ने वोट किया. ग्रामीणों की मांग है कि आजादी के बाद से छोड़िया तथा छबीसा गांव में आने-जाने के लिए सड़क का निर्माण नहीं हुआ है.

माननीयों ने भी लाइन में अपनी बारी का इंतजार : मतदान के दौरान राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री व ओड़िशा के मौजूदा राज्यपाल रघुवर दास ने भालुबासा स्थित हरिजन मध्य विद्यालय में कतारबद्ध होकर मतदान किया. वहीं जमशेदपुर पूर्वी के विधायक सरयू राय, स्वास्थ्य मंत्री बन्ना गुप्ता, टाटा स्टील के प्रबंध निदेशक व उनकी धर्मपत्नी रुचि नरेंद्रन, कांग्रेस के ओड़िशा प्रभारी व पूर्व सांसद डॉ अजय कुमार ने भी अपने-अपने बूथों में कतारबद्ध होकर मतदान किया.

मतदान पर्व

- युवा, बुजुर्ग व दिव्यांग-लाचार मतदाताओं में भी दिखा लोकतंत्र के महापर्व के प्रति उत्साह
- वोटर स्लिप में पीएम की फोटो व कमल का निशान होने पर आचार संहिता का मामला दर्ज

सुबह से ऐसे चढ़ा और गिरा मतदान का ग्राफ

जमशेदपुर । शनिवार सुबह से जिस तरह मतदान का प्रतिशत बढ़ता गया, दोपहर 1:00 बजे के बाद वह गिरता भी गया. सुबह 9:00 बजे तक जिले में 10.5 प्रतिशत मतदान हुआ था, जो सुबह 11:00 बजे तक 17.95 प्रतिशत बढ़ कर 28.45 प्रतिशत पर पहुंच गया. इसी तरह दोपहर 1:00 बजे 14.95 प्रतिशत वृद्धि के साथ 43.28 प्रतिशत पर पहुंचा. इसके बाद से दोपहर 3:00 बजे मतदान में 12.69 प्रतिशत वृद्धि हुई. इस तरह इस समय तक मतदान 56.14 प्रतिशत दर्ज किया गया. शाम 5:00 बजे मतदान की वृद्धि दर घट कर 8.16 रह गयी. इसका कारण 38.2 सेल्सियस तापमान भी हो सकता है.

एक पौधा कल के लिए

जमशेदपुर । जिला निर्वाचन पदाधिकारी सह उपायुक्त अनन्य मित्तल एवं उप विकास आयुक्त (डीडीसी) मनीष कुमार ने लोयोला स्कूल स्थित मतदान केन्द्र पहुंचकर अपने मताधिकार का प्रयोग किया. इस अवसर पर श्री मित्तल ने लोकतंत्र के महापर्व में बढ़चढ़ कर मतदान करनेवाले मतदाताओं के प्रति आभार जताया. साथ ही इस अवसर पर वरीय पदाधिकारियों ने पौधरोपण कर पर्यावरण संरक्षण का संदेश दिया.

वोट डालने के बाद स्याही का निशान दिखाते सरयू राय.

वोट डालने के लिए कतार में खड़े स्वास्थ्य मंत्री बन्ना गुप्ता.

यूसिल मतदानकर्मी जॉन मार्डी की चुनाव ड्यूटी में तबीयत बिगड़ने के बाद हुई मौत

जादूगोड़ा । यूसिल मतदानकर्मी जॉन मार्डी (35 वर्ष) की चुनाव ड्यूटी के दौरान तबीयत बिगड़ गई. इसके बाद उन्हें टीएमएच में भर्ती कराया गया. वहां डॉक्टरों ने जांच के बाद मृत घोषित कर दिया. वह यूसिल की जादूगोड़ा प्रोसेसिंग प्लांट में पदस्थापित था. उसे चुनावी ड्यूटी में गुड़ाबांधा प्रखंड कार्यालय भेजा गया था. इसी दौरान सुबह 11 बजे उसकी तबीयत खराब हो गई. उसे धालभूमगढ़ प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र भेजा गया. वहां से उसे बेहतर इलाज हेतु टीएमएच भेज दिया गया. यहां डॉक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया. मृतक यूसिल कर्मी जॉन मार्डी जादूगोड़ा थाना क्षेत्र के सीता डागा का रहने वाला है. मृतक के परिवार में पत्नी, दो बच्चे व माता-पिता, भाई समेत अन्य लोग हैं. इधर यूसिल कर्मी जॉन मार्डी मौत के बाद जादूगोड़ा में शोक की लहर है.

शास्त्रीनगर व गोलमुरी में मतदान केंद्र पर हंगामा

जमशेदपुर । जमशेदपुर के कदमा थाना क्षेत्र के शास्त्रीनगर स्थित सरस्वती शिशु विद्या मंदिर के एक बूथ और गोलमुरी थाना क्षेत्र के रिफ्यूजी कॉलोनी पंजाब कन्या उच्च विद्यालय स्कूल में बूथ संख्या 263 पर वोगस वोटिंग को लेकर हंगामा हुआ. पंजाब कन्या उच्च विद्यालय के बूथ संख्या 263 पर भाजपा और झामुमो कार्यकर्ताओं के बीच झड़प हुई. दोनों पक्षों के बीच बक-झक होने के बाद धक्का मुक्की के बाद हाथापाई तक की स्थिति उत्पन्न हो गयी. इससे तनाव बढ़ गया. मामले को लेकर मजिस्ट्रेट बृज लता और डीएसपी हेड क्वार्टर सुधीर कुमार तत्काल बूथ पर पहुंचे और स्थिति को नियंत्रित करते हुए वोटरों से बूथ में शांति बनाए रखने की अपील की.

दूसरी ओर शास्त्रीनगर में सरस्वती शिशु विद्यालय मंदिर में एक बूथ पर किसी मतदाता ने अपना वोट किसी अन्य व्यक्ति द्वारा डाल दिये जाने का आरोप लगाया. इसे लेकर वहां कांग्रेस व भाजपा के कार्यकर्ताओं के बीच नोंक-झोंक हुई. स्थानीय पुलिस ने मौके पर पहुंच कर दोनों पक्षों को शांत कराया. उसके बाद निर्बाध व शांतिपूर्ण मतदान संपन्न हुआ.

वहीं, बामनगोड़ा उर्दू मध्य वियालय में सेक्टर मजिस्ट्रेट के पास रिजर्व ईवीएम को देख मतदाता भड़क उठे जिसके मौके पर विवाद की स्थिति उत्पन्न हो गई. हालांकि मामले को लेकर जिला निर्वाचन पदाधिकारी ने कहा कि इसकी जांच की जायेगी.

बहरागोड़ा में वोट देने जा रहे गोबराबनी के ग्राम प्रधान को हाथी ने पटक कर मार डाला

बहरागोड़ा । बहरागोड़ा प्रखंड क्षेत्र मुटूरखाम पंचायत अंतर्गत गोबराबनी गांव के ग्राम प्रधान सुरेंद्रनाथ हांसदा (65 वर्ष) को शनिवार की सुबह एक जंगली हाथी ने पटक कर मार डाला. ग्राम प्रधान की घटनास्थल पर ही मौत हो गई.

जानकारी के अनुसार शनिवार सुबह मृतक अपने गांव से मतदान करने के लिए जंगल के रास्ते धोलाबेड़ा स्थित मतदान केंद्र पर जा रहे थे. उसी क्रम में एक जंगली हाथी ने उन्हें पटक दिया. इससे घटनास्थल पर ही उनकी मृत्यु हो गई. उसके तत्पश्चात घटनास्थल पर ग्रामीणों की भीड़ लग गई है.

घटना की सूचना वन विभाग को दे दी गई है. स्थानीय लोगों के मुताबिक इलाके में पिछले कई दिनों से हाथियों ने उत्पात मचा रखा है. इसमें लगभग 25 जंगली हाथी इस इलाके में भ्रमण कर रहे हैं.

आंखों देखी सुबह 7 बजे से पहले ही लग गई थी मतदान केंद्रों पर लंबी कतार, कुछ बूथों पर बनी अव्यवस्था

मतदाताओं के उत्साह के आगे धीमी रही ईवीएम की रफ्तार

आनंद मिश्र । जमशेदपुर

मतदान को लेकर शहर व आसपास के हिस्सों में सुबह 7:00 बजे के पहले से ही मतदाताओं का आना शुरू हो गया था. मतदाताओं में यह उत्साह मतदान के प्रति जिला प्रशासन की ओर से चलाये गये जागरूकता अभियान का प्रतिफल माना जा सकता है. बावजूद मतदाताओं के उत्साह के आगे अधिकांश बूथों में ईवीएम की रफ्तार धीमी रही. सुबह से ही दिन चढ़ने से लेकर दिन ढलने तक जिस तरह अधिकांश बूथों पर मतदाताओं की कतार बढ़ती गयी, उसके अनुपात में बूथों में मतदान की गति धीमी रही. इसकी वजह बूथों में प्रतिनियुक्त मतदान कर्मी भी हो सकती हैं. लेकिन आम तौर पर यह देखा या मतदाताओं को यह कहते सुना गया कि तीन सेकेंड तक ईवीएम का बटन दबाने के बाद व्हीप की आवाज का इंतजार करना पड़ रहा था. करीह पांच से 10 सेकेंड के बाद व्हीप की आवाज आ रही थी. इस वजह से भी एक मतदाता के मतदान में समय लग रहा था.

अव्यवस्था की एक बानगी

पोटका विधानसभा क्षेत्र के बागबेड़ा स्थित प्राथमिक विद्यालय लंगड़ा टेकरी में तीन बूथ बनाये गये थे, जहां पूरी तरह अव्यवस्था का माहौल नजर आया. यहां बूथ संख्या 33, 34 और 35 था. बूथ संख्या 33 पर विद्यालय परिसर के बाहर तक मतदाताओं की लंबी कतार लगी थी.

बागबेड़ा के बूथ संख्या 33, 34, 35 पर अव्यवस्था का माहौल.

बूथ संख्या 35 पर भी कमोबेश यही स्थिति थी. एक तरफ पुरुष व एक तरफ महिला मतदाताओं की कतार थी. एकमात्र बूथ संख्या 34 ही था, जहां कतार छोटी थी. इस विद्यालय के छोटे से कैंपस में घुसने के लिए मेन गेट भी इतना छोटा है, जिसमें एक ऑटो (टेम्पू) भी नहीं जा सकती है. इसी गेट से तीनों बूथ के मतदाताओं को अंदर जाना था. इस वजह से भी अव्यवस्था का आलम रहा. संभवतः इसी वजह से सुरक्षा बलों के जवान भी कुछ कर पाने में असमर्थ थे. इतना ही नहीं, इस एक विद्यालय भवन में ही बूथ संख्या 34 और 35 में सुबह 9:30 बजे तक हुए मतदान में भी करीब 7 प्रतिशत का अंतर रहा. छोटी कतार वाले बूथ संख्या 34 पर इस समय तक 25 प्रतिशत मतदान हुआ था, जबकि महिला-पुरुष मतदाताओं की लंबी कतार वाले बूथ संख्या 35 पर 18 प्रतिशत ही मतदान हो सका था.

महिला कर्मियों के हवाले रहे शहर के मतदान केंद्र

शहर में जितने भी मतदान केंद्र बनाये गये थे, उन सभी केंद्रों पर महिला मतदान कर्मियों की प्रतिनियुक्ति की गयी थी. यहां तक कि सुरक्षा में भी पुरुष के साथ महिला बलों की तैनाती की गयी थी. केंद्रों पर पुरुषों के मुकाबले महिला मतदाताओं की संख्या अधिक देखी गयी. ग्रामीण क्षेत्रों से मिली जानकारी के अनुसार वहां भी महिला मतदाताओं ने मतदान के प्रति जागरूकता का परिचय दिया है.

रूपनगर के लोगों ने जताया असंतोष

मतदान के लिए सोनारी स्थित रूपनगर के लोग संबंधित मतदान केंद्र पर पहुंचे थे. लेकिन उनमें से कई लोगों को मतदान के बिना ही लौटना पड़ा. वोटर आईडी तो उनके पास है, लेकिन बूथ पर बताया गया कि वोटर लिस्ट में उनका नाम नहीं है. इसलिए वे मतदान नहीं कर सकते. इसे लेकर लोगों ने असंतोष जताया. शहर के कई बूथों पर मतदाताओं को इस तरह की शिकायत करते सुना गया. इनमें उत्तर प्रदेश संघ (मोतीलाल पब्लिक स्कूल) के अध्यक्ष रहे विजय सिंह राणा के साथ भी यही स्थिति रही. कदमा के शास्त्रीनगर में उनका मतदान केंद्र था. वहीं सोनारी में भी एक युवती इसी वजह से मतदान किये बगैर लौटना पड़ा.

103 वर्षीय यशोदा पैदल चल कर पहुंची मतदान केंद्र

जमशेदपुर । मतदान के दौरान विभिन्न बूथों पर बुजुर्ग और दिव्यांग मतदाताओं में भी अपने मताधिकार को लेकर गंभीरता दिखी. जुगसलाई, मानगो व शहर के अन्य क्षेत्रों में ऐसे मतदाता मतदान केंद्रों पर पहुंचे जो चलने में लाचार अथवा 90 की उम्र पार कर चुके हैं.

जुगसलाई के बालक मध्य विद्यालय एमई स्कूल रोड में मतदाता कुसुम लता को उनके परिजन व्हील चेयर से लेकर आये थे. वह चलने में लाचार हैं. उन्होंने बताया कि मतदान हमारा अधिकार है. हमें देश के विकास और राष्ट्रहित में अपने जनप्रतिनिधि का चुनाव करना है. इसलिए किसी भी हाल में मतदान करेंगी. इसी तरह मानगो के आजादनगर में 92 वर्षीय शमीमा खातून परिजनों के साथ व्हील चेयर पर और बिरसानगर के मोहरदा ओड़िया विद्यालय में 103 वर्षीय वृद्धा यशोदा प्रधान भी मतदान करने बूथ पर खुद चल कर पहुंचीं थीं. घोड़ाबांधा में लोगों ने एक दिव्यांग महिला मतदाता को मतदान केंद्र तक पहुंचाया.

वोट डालने के बाद स्याही का निशान दिखाती यशोदा.

बंद रहे बाजार, सड़कें सुनसान

मतदान के मद्देनजर शहर के लगभग सभी हिस्सों में बाजार बंद रहे. जुगसलाई, बिष्टुपुर, साकची, मानगो, कदमा, सोनारी, टेल्को समेत सभी क्षेत्रों में दुकानें बंद रहीं. इसके साथ ही सड़कों पर भी वाहनों की आवाजाही अपेक्षाकृत काफी कम रही.

पहली बार ईवीएम का बटन दबाते ही आंचल का सपना हुआ साकार

वोट डालने के बाद अपने माता-पिता के साथ आंचल.

मुख्य संवाददाता । जमशेदपुर

इस बार भी लोकतंत्र के महापर्व में कई ऐसे युवा मतदाताओं ने भी मतदान किया, जिन्होंने पहली बार मतदान किया है. इन मतदाताओं में मतदान को लेकर काफी उत्साह देखा गया. इनके इस प्रथम अनुभव की बात करें, तो शनिवार को इनका मताधिकार का पुराना सपना साकार हो गया. अपने जनप्रतिनिधि का चुनाव करने के लिए इन्होंने बढ़चढ़ कर मतदान में हिस्सा लिया. सिदगोड़ा के टाटा वर्कर्स यूनियन स्कूल स्थित एक बूथ पर आंचल तिवारी ने मतदान किया.

आंचल आज पहली बार मतदान करने आयी थी. उसने बताया कि सांसद और विधायक क्या होते हैं, उनकी क्या भूमिका होती है, जब से वह यह सब समझने लगी तभी से उसे भी मतदान को लेकर उत्सुकता रहती थी. ताकि देश के विकास को गति देनेवाले अपने जनप्रतिनिधि का चुनाव करने में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके. आंचल ने बताया कि ज्यों-ज्यों मतदान दिवस नजदीक आता जा रहा था, उसकी उत्सुकता बढ़ती जा रही थी.

आज सुबह ही वह मतदान केंद्र जाने के लिए तैयार हो गयी थी. अपने पिता डॉ अंगद तिवारी और मां बबिता तिवारी के साथ संबंधित बूथ पर जाकर मतदान किया. डॉ अंगद तिवारी अर्का जैन यूनिवर्सिटी के परिसर निदेशक एवं डीएसडब्ल्यू हैं. आंचल ने बताया कि इस दौरान उसने मतदान प्रक्रिया को भी जाना और ईवीएम का बटन दबाते ही ऐसा लगा जैसे उसका मताधिकार व अपने जनप्रतिनिधि को चुनने का एक बड़ा सपना साकार हो गया. बता दें कि जिले में युवा मतदाताओं की संख्या 66 हजार 190 है, जिनमें पहली बार मतदान करने वाले मतदाता भी शामिल हैं.

ब्रीफ खबरें

झामुमो ने जफर इकबाल और सुखदेव से मांगा स्पष्टीकरण

लोहरदगा। झामुमो के जिला सचिव अनिल उरांव ने शनिवार को लोहरदगा जिला समिति सदस्य सुखदेव उरांव और जफर इकबाल से स्पष्टीकरण मांगा है. उन्होंने प्रेषित पत्र में कहा है कि विभिन्न जन-संवाद माध्यमों तथा सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म से प्राप्त सूचना के आलोक में लोकसभा आम चुनाव में चमरा लिंडा ने पार्टी के विरुद्ध जाकर निर्दलीय प्रत्याशी के तौर पर चुनाव लड़ा . सुखदेव उरांव और जफर इकबाल ने पूरे चुनाव में इनके पक्ष में प्रचार किया. उपरोक्त तथ्यों के आलोक में लोहरदगा जिलाध्यक्ष मोजम्मील अहमद के निदेशानुसार आप को कारण बताओ नोटिस जारी किया जाता है. सात दिनों के अंदर पक्ष रखें .

जहरीला पदार्थ खाकर युवती ने की आत्महत्या

मेदिनीनगर। चैनपुर थाना क्षेत्र के चांदो गांव निवासी संतोष सिंह की पुत्री रिंकू कुमारी कीटनाशक दवा का सेवन कर आत्महत्या कर ली. घटना के बारे में परिजनों ने बताया कि दोपहर घर में कोई भी व्यक्ति नही था। इसी बीच गांव के किसी व्यक्ति के माध्यम से पता चला कि रिंकू घर में रखे कीटनाशक दवा का सेवन कर ली है. इसके बाद परिजन घर पर पहुंचे और घायल अवस्था में रिंकी को इलाज के लिए मेदिनीनगर सदर अस्पताल लेकर पहुंचे. सदर अस्पताल में इलाज के क्रम में रिंकी की मौत हो गई.

आजसू ने दो शिक्षकों पर कार्रवाई की मांग की

मेदिनीनगर। अखिल झारखंड छात्र संघ (आजसू) के प्रतिनिधिमंडल ने एनपीयू के प्रभारी कुलपति बाल किशुन मुंडा के नाम विश्वविद्यालय में ज्ञापन सौंपा है. ज्ञापन में छात्र हित के मुद्दों को रखते हुए कहा गया कि पिछले कुछ महीनों से जब से आपने पदभार ग्रहण किया है तबसे खासकर देखा जा रहा है कि विश्वविद्यालय के पदाधिकारी अपने मनमाने तरीके से विवि में उपस्थित होते है . पदाधिकारियों के विवि आने जाने का समय तय नहीं है. इस पर अंकुश लगाया जाए .मौके पर हिमांशु रंजन,अंकित तिवारी, बिपिन शुक्ला एवं प्रियांशु वर्मा मौजूद थे .

लोहरदगा में अधेड़ ने फांसी लगाकर दे दी अपनी जान

लोहरदगा। सदर थाना क्षेत्र के करचा टोली में शुक्रवार देर रात देर रात एक अधेड़ अपने घर पर फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली है. शनिवार सुबह परिजनों ने उसे अपने कमरे में फांसी से लटका पाया. स्थानीय लोगों द्वारा घटना की सूचना सदर थाना पुलिस को दी गई. मौके पर पहुंचकर सदर थाना पुलिस ने शव को कब्जे में लेते हुए पोस्टमार्टम उपरांत परिजनों को सौंप दिया है. मृतक के परिजनों ने बतलाया कि मृतक पुणे उरांव एक सप्ताह पूर्व ही दूसरे प्रदेश से मजदूरी का काम करके घर लौटा था. तब से वह किसी बात को लेकर परेशान था.

चार अलग-अलग सड़क दुर्घटना में सात लोग घायल

गुमला। गुमला में शुक्रवार की देर शाम चार अलग-अलग हुए सड़क दुर्घटना में सात लोग घायल हो गए. जानकारी के अनुसार गुमला रायडीह रोड में करौंदी के समीप सड़क पार कर रहे राहगीर को एक बाइक चालक ने धक्का मार दिया. राहगीर करौंदी जग नारायण लोहरा और बाइक चालक जोराग निवासी दिनेश लोहरा घायल हो गए.दूसरी घटना में डोंबा निवासी जग्गू यादव घायल हो गया.सिसई थाना क्षेत्र में ही रेडवा के समीप तेज रफ्तार हाइवा के कारण बाइक चालक अनियंत्रित हो गया. जिससे बाइक सवार तीन युवक गड्ढे में गिरे गए. इस दुर्घटना में बसंत सिंह, सचिन सिंह व भारद्वाज सिंह घायल हो गए.

लोकअदालत में 29 लाख 12 हजार 500 रुपये का मामला सेटल हुआ

पलामू में लोक अदालत में 62 मामलों का निष्पादन

संवाददाता। मेदिनीनगर

पलामू जिला व्यवहार न्यायालय परिसर में शनिवार को प्रधान जिला व सत्र न्यायाधीश नीरज कुमार श्रीवास्तव की अध्यक्षता में आयोजित लोक अदालत का आयोजन किया गया. मासिक लोक अदालत में में 62 मामले का निस्तारण किया गया, वहीं 29 लाख 12 हजार 500 रुपए का मामला सेटल हुआ. इस संबंध में पलामू जिला विधिक सेवा प्राधिकार के सचिव अर्पित श्रीवास्तव ने बताया कि लोक अदालत में मामले निस्तारण को ले 11 पीठों का गठन किया गया था. वही एक हेल्प डेस्क बनाया गया था.

प्रथम पीठ में कुटुंब न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश मार्तंड प्रताप मिश्र व अधिवक्ता वीणा मिश्रा कर रहे थे, जबकि पीठ दो में विद्युत मामले का निस्तारण एडीजे प्रथम विनोद कुमार सिंह व अधिवक्ता अमिताभ चन्द सिंह ने किया. पीठ दो में विद्युत विभाग के 25 मामले का निस्तारण किया गया. पीठ तीन में जिला व सत्र न्यायाधीश के कोर्ट व सभी जिला व अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के कोर्ट से संबंधित मामले का निस्तारण एडीजे चतुर्थ अभिमन्यु कुमार व अधिवक्ता शैलेंद्र नाथ चतुर्वेदी व पीठ चार में आपराधिक मामले का निस्तारण सीजेएम आनंद सिंह व अधिवक्ता सतीश कुमार दुबे ने किया.

पीठ चार में आपराधिक 18 मामले का निस्तारण किया गया. पीठ पांच में सिविल जज सीनियर डिवीजन के सभी कोर्ट के मामले का निस्तारण एसीजेएम संदीप निशित बारा व अधिवक्ता कुमार शिवाजी सिंह कर रहे थे. पीठ आठ में जेजे बोर्ड से संबंधित एक मामले का निस्तारण जेएम समीरा खान व अधिवक्ता अशोक कुमार मिश्रा ने किया. पीठ नौ में रेलवे कोर्ट से संबंधितदो मामले का निस्तारण रेलवे जेएम प्रगयेश निगम व अधिवक्ता संजय कुमार सिन्हा की पीठ ने किया.

विशेष लोक अदालत आठ को

लातेहार। प्रधान जिला एवं सत्र न्यायाधीश सह जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के अध्यक्ष के निर्देश पर आगामी आठ जून को व्यवहार न्यायालय परिसर में पूर्वाह्न आठ बजे से विशेष लोक अदालत का आयोजन किया जाएगा . इस विशेष लोक अदालत में मोटरयान दुर्घटना (एमएसीटी) के वादों का निष्पादन किया जाएगा . जबकि झारखंड राज्य विधिक सेवा प्राधिकार के निर्देश पर जिला विधिक सेवा प्राधिकार लातेहार द्वारा तीन से सात जून तक सुबह 8 :00 बजे से समझौता पूर्व बैठक आयोजित किया जाएगा . अधिक जानकारी के लिए हेल्पलाइन नंबर 8987736366 पर संपर्क किया जा सकता है .

गढ़वा रेंज का रमना वन परिसर बना तेंदुपत्ता कारोबारियों के लिए पनाहगाह

रमना में बिना खलिहान टेंडर के ही संचालित हैं कई गोदाम

संवाददाता। रमना

उतरी वन प्रमंडल गढ़वा रेंज अंतर्गत रमना वन परिसर के वन क्षेत्र इन दिनों अवैध तेंदुपत्ता (बीड़ी पता) कारोबारी के लिए पनाहगाह बना है. इस क्षेत्र में बेरोकटोक और बिना खलिहाना टेंडर के ही खुलेआम संचालित किया जा रहा है. इस क्षेत्र के वन रक्षी मौज उड़ा रहे है. सुरक्षित वनोंपज में तेंदुपत्ता (बीड़ी पता) का महत्वपूर्ण स्थान है.

तेन्दुपत्ता एक प्राकृतिक रुप से उत्पन्न होने वाला पौधा है. इसके पत्तों से बीड़ी बनायी जाती है. माह मार्च-अप्रैल के महीने में तेन्दु पेड़ के नये पत्ते निकलते है जो बीड़ी बनाने योग्य होते है. इन पत्तों का संग्रहण कार्य मई के प्रथम सप्ताह से जून के प्रथम सप्ताह तक किया जाता है. तेंदुपत्ता संग्रहण कार्य में मुख्य रुप से ग्रामीण क्षेत्र से समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के सद्स्यों द्वारा किया जाता है. जिनमें अधिकांश व्यक्ति अनुसूचित जाति जनजाति तथा आदिवासी परिवारों के है. इस कार्य में वर्षो से लगे उक्त वर्ग के लोग पूरे दिन मेहनत करने के बाद भी केवल 150 रु ही कमा पाते है, सरकार का प्रति व्यक्ति आय कागजो पर बढ़त बना रहा लेकिन जमीनी हकीकत कुछ और ही है.

विरोध करने पर मजदूर को हटा दिया जाता है : सूत्रों से पता करने पर उन्होंने बताया कि बीड़ी पता का मजदूरी सौ पोला का 214 रुपये है, जिसमे 200 रुपये तुरंत और 14रुपये प्रत्येक मजदूर खाता में जमा होता है लेकिन गम्हरिया बिट के छपरदगा में संचालित कथित अवैध बीड़ी पता खलिहान के मजदूरों को सौ पोला का मजदूरी 150 रू ही मिलता है और कोई भी खाता में पैसे जमा नहीं होता. यदि कोई मजदूर इस विषय में बोलता है तो उसे काम से ही हटा दिया जाता है जिससे कोई मजदूर इसके विरुद्ध अवाज नहीं उठाता. इस संबंध में वनरक्षी प्रवीण कुमार शुक्ल ने बताया कि इस वनक्षेत्र का टेंडर हुआ है, टेंडर के विषय में पूछने पर बताया कि हम कोई जानकारी नहीं दें सकते निगम से इसका विशेष जानकारी लीजिए. ठेकेदार ने बताया कि निगम द्वारा टेंडर हुआ है इस बारे में निगम से जानकारी लीजिये.

छपरदगा ग्राम में तेंदुपत्ता का अवैध खलिहान

रमना वन परिसर के गम्हरियाबिट अंतर्गत सिलिदाग पंचायत के छपरदगा ग्राम में तेंदुपत्ता का खलिहान अवैध रूप से चल रहा है . इस बात की जानकारी इससे जुड़े ग्रामीणों के द्वारा बताया गया, .तेंदुपता वन क्षेत्र के व्यवसायिक उपज है, जिसके कारोबार से सरकार को राजस्व की प्राप्ति होती है लेकिन अवैध रूप से संचालित इस खलिहान से सरकारी राजस्व का नुकसान हो रहा है और इसमें संलिप्त लोग मौज उड़ा रहे है . आखिर वन विभाग को इतनी गहरी कुम्भकर्ण का नींद कैसे लग गयी, की गत दस दिनों से तेंदुपता का खलिहान लगा हुआ है और इनको पता नहीं . तेंदुपता मजदूर बारपानी निवासी कपिलदेव खरवार ने बताया कि बीड़ी पता के 100 पोला लगाने पर 150 रुपये मिलता है, इसके लिए हमलोग सपरिवार भोर से ही लगते हैं . जिसमें रात के आठ-नौ बज जाता हैं और घर पहुंचते - पहुंचते दस-ग्यारह बज जाता है .

खास बातें

- ग्रामीण मजदूरों से कराया जा रहा पूरा काम, मजदूरी कम
- दिनभर का मेहनताना मात्र 150 रु ही दिया जा रहा है

टीटीआईपीएल की अपील ओवरहेड ट्रैक्सन तारों के आसपास नहीं जाएं

लातेहार। रेल विकास निगम लिमिटेड भारत सरकार के तत्वावधान में ट्रैक्स एंड टावर्स इंफ्राटेक प्राइवेट लिमिटेड (टीटीआईपीएल) द्वारा थर्ड रेल लाइन विस्तार का कार्य किया जा रहा है. बीते गुरुवार को 25 केवीए तार पर ओवर हैड ट्रैक्सन तारो को सावधानी पूर्वक चार्ज किया गया है. इसकी जानकारी टीटीआईपीएल के लाइजनर आफिसर प्रकाश तिवारी ने दी है. तिवारी ने बताया कि लातेहार में थर्ड रेल लाइन का कार्य प्रगति पर है. इस निर्माण कार्य के दौरान 25 केवीए तार पर ओवर हैड ट्रैक्सन तारों को 50 हर्टज एसी पर चार्ज किया गया है. उन्होंने बताया कि ओवर हैड ट्रैक्सन तार में हर समय बिजली प्रवाहित रहेगी. उन्होंने आम लोगों से इस तार को छूने और आस-पास नहीं जाने की अपील की है.

दो पक्षों के बीच हुई मारपीट में तीन व्यक्ति घायल

मेदिनीनगर। सतबरवा थाना क्षेत्र के पत्थल चट्टी गांव में दो पक्षों के बीच हुई मारपीट में महिला सुभावती देवी उम्र 45 वर्ष, अर्जुन चौधरी उम्र 35 वर्ष, सीमा देवी उम्र 34 वर्ष गंभीर रूप से घायल हो गए. परिजनों ने तीनों घायलों को इलाज के लिए सतबरवा सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र लाया गया. चिकित्सकों ने तीनों घायलों की गंभीर स्थिति को देखते हुए उन्हें बेहतर इलाज के लिए मेदिनीनगर सदर अस्पताल रेफर कर दिया है. जहां इलाज के बाद भी अर्जुन चौधरी और सुभावती देवी की स्थिति गंभीर बनी हुई है. घटना के बाद परिजनों के द्वारा इसकी जानकारी सतबरवा थाना की पुलिस को दी गई. घटना की जानकारी मिलते ही सतबरवा थाना की पुलिस घटना स्थल पर पहुंचकर घटना से संबंधित मामले की छानबीन में जुट गई है .

विश्रामपुर सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र में जल्द शुरू होंगे सभी ऑपरेशन : सीएस

संवाददाता। विश्रामपुर/पलामू

विश्रामपुर सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र में शुक्रवार को आयुष्मान भारत कार्यक्रम के तहत सभी सफाई कर्मियों को सम्मान समारोह सह पुरस्कार वितरण का आयोजन किया गया. समारोह की अध्यक्षता प्रभारी चिकित्सा पदाधिकारी डॉक्टर राजेंद्र कुमार व संचालन मिथिलेश दुबे ने की. बतौर मुख्य अतिथि पलामू सिविल सर्जन डॉ अनिल कुमार सिंह ने कहा कि साफ सफाई का हमारे जीवन में अहम भूमिका होती है. जिसके कर्मी प्रतिनियुक्त किए गए हैं. जिन्हें सफाई कर्मी है से संबोधित किया जाता था. लेकिन हम उन्हें सफाई कर्मी न कहते हुए सफाई मित्र से संबोधित करेंगे. साथ हीं साथ हर क्षेत्र में शुरुवात व अंतिम कार्य के बाद में सफाई मित्र की अहम भूमिका होती है.

आयोजित सम्मान समारोह में सिविल सर्जन डॉ अनिल सिंह ने सफाई मित्र को पुरुस्कृत किया. सिविल सर्जन श्री सिंह ने विश्रामपुर सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र अंतर्गत आयुष्मान भारत योजना के तहत सभी कार्यों की समीक्षा की. समीक्षा के दौरान सभी कार्य संतोषजनक पाया गया. उन्होंने बेहतर कार्य करने, स्वास्थ्य सुविधा पहुंचाने वाले प्रभारी चिकित्सा पदाधिकारी डॉ राजेंद्र कुमार का जमकर प्रशंसा की.

हॉकी सिमडेगा का मिनी सब जूनियर ग्रास रूट डेवलपमेंट हॉकी लीग संपन्न

डे बोर्डिंग हॉकी सेंटर व आरसी उत्क्रमित मध्य विद्यालय करगागुड़ी की टीम बनी चैंपियन

संवाददाता। सिमडेगा

सिमडेगा में शनिवार को चार दिवसीय मिनी सब जूनियर ग्रास रूट डेवलपमेंट हॉकी लीग शनिवार को संपन्न हुआ. यह आयोजन हॉकी झारखंड, जिला प्रशासन और जय टेंट के सहयोग से हॉकी सिमडेगा ने किया था. बालिका वर्ग में डे बोर्डिंग हॉकी सेंटर करगागुड़ी और बालक वर्ग में आरसी उत्क्रमित मध्य विद्यालय की टीम चैंपियन बनी. बालक वर्ग में गोंडवाना क्लब सिमडेगा की टीम उपविजेता रही, वहीं आत्म निर्भर हॉकी प्रशिक्षण केंद्र कुरकुरा की तीसरे स्थान पर रही. बालिका वर्ग में गीता कुमार और बालक वर्ग में रंजीत चिक बड़ाइक को प्लेयर ऑफ द टूर्नामेंट पुरस्कार मिला. वहीं इमर्जिंग प्लेयर ऑफ द टूर्नामेंट का अवार्ड करिश्मा कुल्लू व ललेश्वर मांझी को मिला. दोनों वर्ग के विजेता व उपविजेता टीमों को ट्रॉफी व जर्सी देकर सम्मानित किया गया. वहीं प्रतियोगिता के शामिल सभी 10 टीमों के 160 खिलाड़ियों को जर्सी सेट देकर सम्मानित किया गया.

विजेता व उपविजेता टीमों को मुख्य अतिथि सिमडेगा के अनुमंडल पदाधिकारी सुमन तिर्की,अंतरराष्ट्रीय महिला हॉकी खिलाड़ी रोपनी कुमारी और जय टेंट के संचालक धनजय कुमार ने पुरुस्कार देकर सम्मानित किया.

बालिका वर्ग में डे बोर्डिंग ने आरसी उत्क्रमित मध्य विद्यालय को हराया : बालिका वर्ग में फाइनल मुकाबला डे बोर्डिंग हॉकी सेंटर करंगागुडी और आरसी उत्क्रमित मध्य विद्यालय करंगागुड़ी के बीच खेला गया. इस मुकाबले में डे बोर्डिंग हॉकी सेंटर करंगागुड़ी की टीम ने 2-0 से जीत दर्ज की. टीम की ओर से जसमेन कुल्लू और सात वर्ष की करिश्मा कुल्लू के एक-एक गोल दागे. रितिका लकड़ा को प्लेयर ऑफ द फाइनल का पुरस्कार मिला.

न्यूज अपडेट

....सत्यापन नहीं किया तो नहीं मिलेगा गैस सब्सिडी का पैसा

लातेहार। प्रखंड के जितने भी गैस कनेक्शन धारी हैं, सभी लोग बायोमेट्रिक सत्यापन कर ले नहीं तो गैस सब्सिडी नहीं मिल पाएगा. इसकी जानकारी महुआडांड़ स्थित महुआ भारत गैस एजेंसी के प्रोपराइटर मोहम्मद इमरान खान ने दी. बताया कि उज्जवला योजना के जितने भी कनेक्शन धारी हैं, सभी को बायोमेट्रिक सिस्टम के आधार पर ही गैस की आपूर्ति की जाएगी. इसके लिए सभी उज्जवला योजना के लाभार्थी को बायोमेट्रिक सत्यापन करना अति आवश्यक है. अगर वह नहीं कराते हैं तो उन्हें गैस की सब्सिडी नहीं मिल पाएगी. बायोमेट्रिक सत्यापन कराने की अंतिम तिथि 31 में तक है. बायोमेट्रिक सत्यापन के लिए अपने गैस एजेंसी में जाकर सभी उपभोक्ता ई केवाईसी करवा सकते हैं. इसमें आधार कार्ड का सत्यापन करना होगा .

31 मई तक है अंतिम तिथि

लेस्लीगंज कोट ठाकुरबाड़ी में दीप यज्ञ संपन्न

नीलांबर पितांबरपुर। प्रखंड के कोट ठाकुरवाड़ी मंदिर में शांतिकुंज हरिद्वार से आए हुए गायत्री परिवार के टोली द्वारा एक दिवसीय दीप यज्ञ हुआ संपन्न. यज्ञ के मुख्य यजमान संदीप सोंडिक सह पत्नी प्रतिमा गुप्ता रही . वही मंदिर के मुख्य पुजारी सुभाष चंद्र मिश्रा पुरोहित के रूप में रहे . इस धार्मिक आयोजन में अधिक संख्या में मातृ शक्ति की उपस्थिति रही. गायत्री परिवार की सदस्यों द्वारा दीप यज्ञ की महत्ता को बताते हुए कहा कि दीपक की लौ ऊपर की ओर ले जाती है सुमार्ग की ओर प्रेरित करती है और सदा प्रगति पथ पर बढ़ने के लिए दिशा निर्देश देती है.

तीन दिवसीय निःशुल्क योग शिविर एक से

लातेहार। शहर के जुबली रोड के होटल द कार्निवलस में आगामी एक से तीन जून तक निःशुल्क तीन दिवसीय योग शिविर का आयोजन किया गया जायेगा. शिविर प्रातः छह से आठ बजे तक आयोजित किया जायेगा. इस शिविर में आचार्यकुलम व स्वामी रामदेव के शिष्यों के द्वारा योग व प्रणायाम की जानकारी दी जायेगी. शिविर में भाग लेने के लिए या अन्य किसी जानकारी के लिए मोबाइल नंबर 9927127555/ 8210989177 पर संपर्क किया जा सकता है.

ग्रासीम ने लगाया स्वास्थ्य शिविर,उमड़ी भीड़

विश्रामपुर(पलामू)। ग्रासीम रेहला ने विशुनपुर स्थित परिवार कल्याण केंद्र में आसपास की ग्रामीण महिलाओं के लिए निःशुल्क स्त्री रोग जांच, उपचार एवं जागरूकता हेतु विशेष शिविर लगाया. मुख्य अतिथि संस्थान प्रमुख, ग्रासिम इंडस्ट्रीज लिमिटेड हितेंद्र अवस्थी ने दीप प्रज्वलन कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया. मुख्य अतिथि ने कहा कि समाज मे महिलाओं की भागीदारी पुरुषों के बराबर है. आज हर क्षेत्र में महिलाएं आगे आ रही हैं.सबों का समुचित ध्यान रखती हैं लेकिन व्यस्तता में खुद का ख्याल नहीं रख पाती हैं. कार्यक्रम का संचालन सीएसआर के अनिल गिरि ने किया.शिविर में कुल 135 महिलाओं का उपचार किया गया .शिविर में महिलाओं की जांच हेतु सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, बिश्रामपुर की लैब टेक्निशियन रूपा गुप्ता ने महवपूर्ण योगदान दिया .

टेलर दुकान में लगी आग, लाखों का नुकसान

मेदिनीनगर। सदर थाना क्षेत्र के पोखराहा गांव स्थित शमीम अंसारी की सिलाई दुकान में शनिवार को तड़के लगभग 3 बजे अचानक आग लग गई. इसके बाद स्थानीय लोगों ने आग लगने की सूचना दुकान मालिक शमीम अंसारी को दी . जानकारी मिलते ही शमीम अंसारी अपनी दुकान पहुंचकर ग्रामीणों के सहयोग से आग को बुझाने का प्रयास किया लेकिन आग अपने विकराल रूप में था. इस बीच लोगों ने घटना की सूचना अग्निशमन विभाग को दी. जानकारी मिलते ही सदर थाना प्रभारी उत्तम कुमार राय और फायर ब्रिगेड के कर्मचारियों ने घटनास्थल पर पहुंचकर आग पर काबू पाया. अगलगी की इस घटना में भुक्तभोगी को लाखों का नुकसान हुआ है. दुकान में रखे ग्राहकों का कपड़ा, सिलाई मशीन, पिक्को मशीन, सहित अन्य सामान जल कर राख हो गया है. वही घटना के बाद भुक्तभोगी शमीम अंसारी ने अगलगी की घटना से संबंधित मामला सदर थाना में दर्ज कराया है.

शिविर में सौ यूनिट से अधिक रक्त का संग्रह

विश्रामपुर/पलामू। लक्ष्मी चंद्रवंशी मेडिकल कॉलेज एंड हॉस्पिटल में ब्लड बैंक के लिए रक्तदान शिविर का आयोजन किया गया. शिविर के मुख्य अतिथि गढ़वा सिविल सर्जन डॉ अशोक कुमार, डिप्टी डायरेक्टर विवेक चंद्रवंशी, एमएस डां ओपी श्रीवास्तव, वीसी प्रो डॉ कल्याण कुमार, डिप्टी सुप्रीटेंडेंट ज्योतिका श्रीवास्तव, डां श्रावंती, प्रशासनिक अधिकारी जितेंद्र कुमार, ब्लड बैंक गढ़वा जिला कोर्डिनेटर प्रदीप कुमार, एडमिनिस्ट्रेशन नीतीश कुमार, संदीप कुमार ने संयुक्त रूप से दीप प्रज्ज्वलित कर उद्घाटन किया. गढ़वा सिविल सर्जन डॉ अशोक कुमार ने कहा कि रक्तदान महादान है.

चांदी का सिक्का और गहने चुराने वाला पकड़ाया

मेदिनीनगर । शहर थाना की पुलिस ने चोरी के आरोप में राजा कुमार उर्फ कुकू डोम को गिरफ्तार कर शनिवार को न्यायिक हिरासत में भेज दिया है. तीन चोर अभी भी पुलिस के गिरफ्त से बाहर हैं . तीनों चोरों को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस छापामारी कर रही है.पकड़े गए चोर के पास से सेटर का ताला तोड़ने वाला समान और तीन चांदी का सिक्का बरामद किया गया है . शहर के दीपू कुमार गुप्ता ने गत 5 मई को अपनी दुकान में चोरी होने की घटना का आवेदन दिया था. तीन और दुकानदारों ने चोरी की शिकायत की थी .

लायंस क्लब में राहगीरों में बांटा शीतल जल

मेदिनीनगर। शहरवासियों की सेवा को लेकर तत्पर रहने वालै सामाजिक संगठन लायंस क्लब सदस्यों ने भीषण गर्मी को देखते हुए रेड़मा चौक पर शीतल पेय पदार्थो का वितरण किया. इस दौरान लोगों के बीच सतू, लस्सी, शरबत, अमझोरा समेत कई प्रकार के हुए पदार्थ वितरित किए गए. लायंस क्लब के अध्यक्ष आलोक माथुर ने कहा कि गर्मी के इस मौसम में वर्तमान में 40 डिग्री सेल्सियस से अधिक मेदिनीनगर का तापमान पहुंच चुका है. मौके पर क्लब के सेक्रेटरी संजय पाठक, ट्रेजरर दिलीप सांवरिया, सीनियर मेंबर सुधीर अग्रवाल, आरसी रीजन चेयरपर्सन समीर खन्ना, सेकंड वाइस डिस्ट्रिक्ट गवर्नर संजय कुमार, पीयूष तुलस्यान, प्रभात कुमार, रूपेश कुमार, नवीन गुप्ता, आदि मौजूद थे.

समस्या

पीएम के स्वच्छ भारत मिशन को पलीता लगा रहा अफसरशाही

कचरे से पटा श्री बंशीधर नगर,दुर्गंध से लोग परेशान

संवाददाता। श्री बंशीधर नगर

पीएम नरेन्द्र मोदी ने जहां देश को स्वच्छ एवं स्वस्थ बनाने के लिए स्वच्छता अभियान को मिशन बना दिया है. लेकिन श्री बंशीधर नगर पंचायत के हाकिम और हुक्मरान पीएम के मिशन पर पलीता लगा रहे हैं. यहां सफाई के नाम पर प्रतिमाह लाखों रुपए खर्च किए जा रहे हैं उसके बावजूद पूरा शहर कचरे से पटा हुआ है. सफाई के नाम पर सिर्फ कागजी खानापूर्ति कर सरकारी राशि को ठिकाने लगा दिया जा रहा है.

ज्ञात हो कि श्री बंशीधर नगर शहर को स्वच्छ एवं विकसित शहर बनाने की जिम्मेवारी नपं की है. लेकिन नपं बनने के 8 वर्षों बाद भी शहर को स्वच्छ एवं विकसित बनाने की दिशा में ईमानदार कोशिश नहीं हुई है. शहर के विभिन्न वार्डों की बात तो दूर शहर की हृदयस्थली थाना के बगल में गंदगी का अंबार लगा हुआ है. वहीं थाना के सामने मुख्य गेट पर व शहर की गलियों में स्थित नालियां बजबजा रही हैं. नालियों से निकल रही बदबू से शहर वासियों का जीना मुहाल हो गया है. लोग नगर पंचायत की करतूत से आजीज आकर दुर्गंध में जीवन जीने को मजबूर हैं. शहरवासी नगर पंचायत को नरक पंचायत घोषित कर चुके हैं.नतीजतन लोग गंभीर बीमारी से भी ग्रसित हो रहे हैं.सबसे दिलचस्प बात है कि शहर को स्वच्छ बनाने के लिये नगर पंचायत की झाड़ लगाया जा रहा है. अगर कहीं कचरा पड़ा है तो जल्द ही सफाई करा दी जायेगी.

स्वच्छ बनाने की बात तो दूर सफाई सुपरवाइजर जहां निवास करते हैं वहीं पर नालियां बजबजा रही हैं.

सफाई के पैसे से सुपरवाइजर बना हीरो

नगर पंचायत शहर की सफाई कराने में जीरो साबित हो रहा है. जबकि सफाई कराने वाले सफाई सुपरवाइजर सफाई के पैसे से हीरो बन गया है. शहर की सफाई के नाम पर नगर पंचायत की ओर से नगर पंचायत कार्यालय का दो ट्रैक्टर, सात ऑटो टीपर एवं सफाई सुपरवाइजर का दो ट्रैक्टर कुल 11 वाहनों को लगाया गया है. जबकि 40 से 45 सफाई कर्मी कार्यरत हैं. उसके बाद भी शहर की हृदयस्थली को भी स्वच्छ नहीं बनाया जा सका है.

क्या कहते हैं कार्यपालक पदाधिकारी

इस संबंध में पूछने पर नपं के कार्यपालक पदाधिकारी अमरेन्द्र कुमार ने बताया कि शहर में दो बार ओर से सफाई सुपरवाइजर को बहाल किया गया है, उन्हें ही सफाई की जिम्मेवारी दी गई है. लेकिन शहर को

अर्द्धनिर्मित जलमीनार का काम छोड़ ठेकेदार फरार

शकील अहमद। भंडरा (लोहरदगा)

भंडरा प्रखंड मुख्यालय के पास बरवाटोली में मुख्यमंत्री जल नल योजना के से जलमीनार निर्माण कराने का काम अधूरा छोड़कर ठेकेदार गायब हो गया. जिससे बस्ती में रहने वाले 50 परिवारों के सदस्यों में भारी आक्रोश है. ग्रामीणों ने कहा कि इस बार गरमी में लगा पीने के पानी की समस्या से हम लोगों को राहत मिलने वाली है.लेकिन ऐसा नहीं हो पाया.

बरवाटोली निवासी सुलतान अंसारी ,शाहिद अंसारी ,मोहन यादव, मंगल उरांव ,सीमा उरांव ने बताया की लगभग 6 महीना पहले मुख्यमंत्री जल-नल जलमीनार बनाने का काम ठेकेदार ने शुरू किया था, परंतु ठेकेदार ने सिर्फ जलमीनार खड़ाकर पाइप लाइन का काम अधूरा छोड़ दिया है. यहां पर दो इंच की पाइप के जगह एक इंच के पाइप को लगाकर जैसे तैसे मट्टी भर दिया है . जलमीनार बनने से पहले सभी घर पानी पहुंचाने की बात कही थी . चौपाल पर नल डालकर छोड़ दिया गया है. साथ ही पाइप भी पूरा नहीं लगाया गया है. बरवाटोली में रह रहे लोगों ने बताया कि पीने के पानी के लिए उन्हें बाहर जाकर चुंआ से पानी लेकर घर का काम करना पड़ रहा है. ठेकेदार की लापरवाही से मुहल्ले वाले को पीने की पानी को लेकर अब उन्हें काफी परेशानी का सामना करना पड़ रहा है.

खास बातें

- मुख्यमंत्री जल -नल योजना से हो रहा था जलमीनार का निर्माण
- गुस्साए ग्रामीणों ने ठेकेदार के खिलाफ कार्रवाई की मांग की

ब्रीफ खबरें

कदमा गणेश मैदान में फूड वैन में लगी आग

जमशेदपुर । जमशेदपुर के कदमा थाना अंतर्गत गणेश पूजा मैदान में शनिवार दोपहर उस वक्त अफरा-तफरी मच गई जब एक फूड वैन में अचानक आग लग गई. आग ने धीरे-धीरे पूरे वैन को अपने कब्जे में ले लिया. स्थानीय लोगों ने इसकी सूचना अग्निशमन विभाग को दी. सूचना पाकर टाटा स्टील का एक दमकल मौके पर पहुंचा और आधा घंटा की कड़ी मशक्कत के बाद आग पर काबू पा लिया. आग का कारण सिलेंडर से गैस लीकेज बताया जा रहा है. इधर, आग बुझने के बाद वैन से पांच घरेलू गैस सिलेंडर बरामद किया गया.

लोको कॉलोनी में माता के दर्शन को उमड़े श्रद्धालु

चक्रधरपुर । रेलवे क्षेत्र लोको कॉलोनी में पांच दिवसीय माता पूजा के अवसर पर शनिवार को माता का दर्शन व पूजा अर्चना के लिए श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ी. यहां श्रद्धालुओं ने विधिवत पूजा अर्चना कर माता को प्रसाद चढ़ाया. इस अवसर पर मन्नतें पूरी होने वाले श्रद्धालु घट यात्रा निकालकर माता के दरबार में पहुंचे. शनिवार सुबह से ही माता की पूजा के लिए श्रद्धालुओं की भीड़ जुटने लगी थी. यहां पांच दिनों तक माता के अलग-अलग रुपों की पूजा की जाती है. शाम के वक्त माता के नये रुप के पट खोल दिये जाते हैं, जिसे देखने बड़ी संख्या में श्रद्धालु पहुंचते हैं.

तांतनगर में बोरिंग पर लगा हैंडल चोर ले गये

चाईबासा । तांतनगर प्रखंड के कोकचो पंचायत के अंतर्गत रोलाडीह, उरांव साई, और सोगोडसाई मरंग फुटबॉल मैदान के पास एक माह पूर्व बोरिंग की गई थी. इस बोरिंग पर लगा हैंडल अज्ञात लोगों के ने दिनदहाड़े चोरी कर ली. रोलाडीह गांव के ग्रामीण गोनो बारी ने कहा कि मेरे घर के नजदीक एक माह पूर्व बोरिंग हुआ था. बोरिंग होने के पश्चात बोरिंग करने वाले लोगों ने चापाकल में हैंडल और पाइप लगाया. उसी तरह उरांवसाई और मारंग फुटबाल मैदान के पास भी बोरिंग में हैंडल और पाइप लगाया गया. लेकिन कुछ दिन के बाद ही हैंडल गायब हो गया.

जरकी गांव में ग्रामीणों ने पुल निर्माण कराया बंद

चक्रधरपुर । पश्चिमी सिंहभूम जिला के बंदगांव प्रखंड की कराईकेला पंचायत के जरकी गांव में ग्रामीणों ने पुल निर्माण कार्य को बंद करा दिया. ग्रामीणों की मांग है कि जब तक पुल के ऊपर से गुजरे 11 हजार वोल्ट के तार को हटाया नहीं जाएगा तब तक कार्य शुरू नहीं करने दिया जाएगा. शनिवार को जरकी गांव में ग्रामीणों ने बैठक की. इसकी अध्यक्षता गांव के मुंडा अशोक प्रधान ने की. जरकी गांव में ब्रह्मणी नदी के ऊपर पिछले वर्ष नवंबर-दिसंबर में पुल निर्माण का कार्य शुरू किया गया था. पुल की ऊंचाई बढ़ने के कारण तार पुल के नजदीक आ गया है.

मंझारी में बिजली की करंट से तीन मवेशियों की मौत

चाईबासा । मंझारी थाना क्षेत्र के इपिलसिंगी पंचायत के ग्राम उकुमडकम में 11 हजार वोल्ट के तार की चपेट में आने से 3 मवेशियों की मौत हो गई. उकुमडकम ग्राम में 11 हजार वोल्ट का तार टूटकर गिर गया था. इससे हरीश तामसोय के दो बैल एवं प्रधान तामसोय का एक बैल तार की चपेट में आ गए और करंट लगने से तीनों की मौत हो गई. जानकारी मिलने पर इसकी सूचना विद्युत सब स्टेशन झींकपानी को देकर लाइन कटवा दी गई है. पशु चिकित्सा पदाधिकारी मंझारी को भी जानकारी दे दी गई है.

रांची लोस का ईचागढ़ विधानसभा क्षेत्र : घरों से निकले लोग, महिलाओं में मतदान को लेकर दिखा खासा उत्साह

नक्सली क्षेत्र में भी जमकर हुआ मतदान

दिलीप कुमार । चांडिल

झारखंड में छठे चरण के लोकसभा चुनाव में रांची लोकसभा क्षेत्र अंतर्गत ईचागढ़ विधानसभा क्षेत्र में शनिवार को मतदाताओं ने जमकर मतदान किया. इसको लेकर सुबह 7 बजे से क्षेत्र के सभी मतदान केंद्रों में वोटिंग प्रक्रिया शुरू की गई थी. लोग मतदान प्रारंभ होने के पहले से ही कतार में लगने लगे थे.

ईचागढ़ विधानसभा क्षेत्र के नक्सल प्रभावित क्षेत्र रांका, हेंसाकोचा, टुरू समेत अन्य क्षेत्रों में मतदान को लेकर लोगों में जबरदस्त उत्साह देखा गया. लोग कतारबद्ध होकर वोटिंग कर रहे थे. 2009 के बाद अपने मतदान केंद्र में मतदान करने की सुविधा मिलने पर हेंसाकोचा, टुरू, रांका आदि गांव के मतदाताओं में काफी उत्साह देखा गया. हेंसाकोचा और रांका की अपेक्षा टुरू में मतदान धीमा रहा.

सुबह से ही पहुंचने लगे मतदाता

जैसे-जैसे दिन चढ़ता गया नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में मतदान भी बढ़ता गया. हेंसाकोचा में मतदाताओं के लिए दो मतदान केंद्र बनाया जाता है. मतदान केंद्र संख्या 222 में कुल मतदाता 703 हैं.

जहां दोपहर 11बजे तक 310 मतदाता अपने वोट डाल चुके थे. वहीं मतदान केंद्र संख्या 223 में मतदाताओं की कुल संख्या 601 हैं, जहां 233 मतदाताओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया था. मतदान केंद्र संख्या 219 रांका में सुबह 11 बजे तक 289 मतदाताओं ने मतदान किया था. इसमें 65 पुरुष व 85 महिला मतदाता शामिल हैं. बताया गया कि टुरू में मतदाताओं की कुल संख्या 1255 है. यहां दोपहर 12 बजे तक 445 मतदाताओं ने अपने मताधिकार का उपयोग कर लिया था.

मतदाताओं में दिखी खुशी

मतदान केंद्र उग्रवाद प्रभावित क्षेत्र में होने, दुर्गम छोर पहाड़ी क्षेत्र से घिरे होने और संवेदनशीलता के कारण 2009 में हुए चुनाव से ईचागढ़ विधानसभा क्षेत्र में छह बूथों का स्थान परिवर्तन किया जाता था.

बदले गए बूथों में मतदान केंद्र संख्या 219 उमवि रांका, 220 प्राविटुरु, 222 मवि हेंसाकोचा पूर्वी भाग व बूथ संख्या 223 मवि हेंसाकोचा पश्चिमी भाग, बूथ संख्या 224 उमवि रेयाड़दा व 225 उमवि बारसिड़ा शामिल थे. इनमें मतदान केंद्र संख्या 219 उमवि रांका, 220 प्राविटुरु, 222 मवि हेंसाकोचा पूर्वी भाग व बूथ संख्या 223 मवि हेंसाकोचा पश्चिमी भाग को मतदान केंद्र संख्या 221 उमवि पालना में और बूथ संख्या 224 उमवि रेयाड़दा व 225 उमवि बारसीड़ा को बूथ संख्या 227 उमवि गुटिउली में स्थानांतरित किया जाता था.

इस लोकसभा चुनाव में इन बूथों का स्थानांतरण नहीं किया गया था. सभी मतदाता अपने-अपने बूथ पर ही मतदान किए. इसको लेकर भी मतदाताओं में खुशी थी.

ओडिशा के क्योंझर लोकसभा व चंपुआ विधानसभा सीट के लिए गवर्नमेंट उच्च विद्यालय, किरीबुरु, हिलटॉप स्थित मतदान केंद्र पर मतदान के लिए लंबी कतार.

मतदान का उत्साहः पहली बार वोट डालने के बाद खुशी जतातीं युवतियां.

हिलटॉप में भी दिखा वोटरों में उत्साह

किरीबुरू । 25 मई को झारखण्ड सीमा से सटा ओड़िसा के क्योंझर लोकसभा व चम्पुआ विधान सभा सीट के लिये गवर्नमेंट उच्च विद्यालय, किरीबुरु, हिल्टौप स्थित मतदान केन्द्र पर एक साथ शांतिपूर्ण चुनाव कार्य प्रारम्भ हुआ.

मतदान प्रारम्भ होने से पूर्व हीं पुरुष व महिला मतदाताओं की लंबी कतारें लग गई थी. इस बूथ पर मतदाताओं की कुल संख्या 965. इस बूथ पर पहला पुरुष व महिला वोटर्स कुंदन कुमार गुप्ता एवं रुपा कुमारी थे.

चुनाव पर्व में शामिल हुए पूर्व नक्सली के माता-पिता

चांडिल । शनिवार को रांची संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में मतदान हुआ. इस चुनाव पर्व में सभी बढ़-चढ़कर शामिल हुए. वहीं पूर्व नक्सली महाराज प्रमाणिक के माता-पिता भी चुनाव पर्व में शामिल होकर देश गढ़ने में अपनी सहभागिता निभाई. ईचागढ़ प्रखंड के दारूदा के रहने वाले जरासिंधु प्रमाणिक और नीलमणि प्रमाणिक ने आमनदिरी मतदान केंद्र पर मतदान किया. महाराज प्रमाणिक फिलहाल

मुख्यधारा में लौट आए हैं. आत्मसमर्पण करने के बाद वे अभी जेल में ही हैं.

थीम आधारित पोलिंग बूथ रहे आकर्षण का केंद्र

1. दिव्यांगता संवेदीकरण : जयप्रकाश उच्च विद्यालय, शास्त्रीनगर कदमा **2. जल बचाओ-धरती बचाओ :** गवर्नमेंट आदर्श विद्या निकेतन उच्च विद्यालय छोटा गोविन्दपुर, संत मेरी मिशन नर्सरी स्कूल कदमा, डीएवी पब्लिक स्कूल रामदास भट्ठा बिष्टुपुर, शिक्षा निकेतन टेल्को **3. हरित ऊर्जा :** राजकीय हरिजन मिडिल स्कूल जोजोबेड़ा, कार्मेल जूनियर कॉलेज सोनारी, डीबीएमएस कदमा हाई स्कूल **4. मंडप :** बीपीएम मिडिल स्कूल बर्मामाइंस **5. मृदा संरक्षण :** जमशेदपुर उच्च विद्यालय, कॉन्ट्रैक्टर्स एरिया बिष्टुपुर **6. रक्तदान जागरूकता :** राजेंद्र विद्यालय साकची, केरला पब्लिक स्कूल कदमागैर **7. संचारी रोग एवं सर्वाइकल कैंसर संबंधी जागरूकता :** श्यामा प्रसाद मीडिल स्कूल खासमहल, एस.एस उच्च विद्यालय करनडीह **8. चंद्रयान :** जेएच तारपोर हाई स्कूल धातकीडीह **9. पुष्प :** लोयोला इंग्लिश हाई स्कूल **10. केला पत्ता :** प्लस टू हाई स्कूल नरसिंहगढ़ **11. इंद्रधनुष :** साकची हाई स्कूल **12. गांधी आश्रम एवं इन्द्रधनुष :** कुष्ठ आश्रम बर्मामाइंस **13. हरित एवं परमाणु ऊर्जा :** जादूगोड़ा कम्यूनिटी सेंटर **14. भारतीय सेना :** सिस्टर निवेदिता गर्ल्स हाई स्कूल बर्मामाइंस **15. जल संरक्षण :** हिल टॉप स्कूल **16. झारखंड जनजातीय संस्कृति :** विद्या भारती चिन्मया विद्यालय टेल्को **17. टेक्नोलॉजी एवं रोबोटिक्स :** गुलमोहर हाई स्कूल टेल्को **18. झोपड़ी :** एबीएमपी राहरगोड़ा **19. बांस आधारित बूथ :** विजया गार्डन बूथ **20. ईको फ्रेंडली बूथ :** जुस्को स्कूल कदमा

कांड्रा में दो लाख का रेलवे स्क्रैप बरामद, पांच गिरफ्तार

संवाददाता । आदित्यपुर

आरपीएफ आदित्यपुर ने रेलवे स्क्रैप कटिंग गिरोह के अड्डे पर शुक्रवार की देर रात छापेमारी की. आरपीएफ ने कांड्रा टोल प्लाजा स्थित अखिलेश पोद्दार नामक व्यक्ति के टाल में छापेमारी की. आरपीएफ ने टास से करीब 2 लाख रुपये की रेलवे स्क्रैप बरामद किया है. आरपीएफ ने पांच लोगों को गिरफ्तार भी किया है.

आरपीएफ सूत्रों के अनुसार रेलवे का कुख्यात स्क्रैप माफिया अखिलेश पोद्दार आदित्यपुर थाना क्षेत्र अंतर्गत राममड़ैया के पास से टाटा स्टील कंपनी से निकलने वाली मालगाड़ी के डब्बे से शीट, दरवाजा आदि तोड़कर नदी के किनारे गिरा देता था. बाद में उसे छोटी-छोटी गाड़ियों में लोड कर कांड्रा स्थित अपने स्क्रैप टाल में स्टोर कर वहां से बड़े ट्रकों में भरकर बाहर भेजता था.

आरपीएफ आदित्यपुर प्रभारी को इसकी भनक 10 दिन पूर्व लगी थी. इसके बाद क्राइम ब्रांच और अन्य अधिकारियों के साथ टीम का गठन कर इसकी जांच शुरू की गई. इसी क्रम में शुक्रवार को अभिजीत पोद्दार के स्क्रैप टॉल में छापेमारी कर ट्रक (जेएच 02एपी 2219) में लोड स्क्रैप को जब्त किया गया है. वहीं मौके से ट्रक चालक जयप्रकाश सिंह के साथ स्क्रैप लोड कर रहे उमा सिंह, दीपक यादव, संतोष मिश्रा, रौशन यादव को गिरफ्तार कर लिया गया है.

आरपीएफ ने इस मामले में मुख्य आरोपी अखिलेश पोद्दार, उसके मुंशी मोहन गोराई समेत सात को नामजद अभियुक्त बनाया है. छापेमारी में आरपीएफ प्रभारी के अलावे क्राईम ब्रांच के इंस्पेक्टर शैलेश चंद्र तथा आरपीएफ के जवान शामिल थे. अखिलेश पोद्दार रेलवे का कुख्यात स्क्रैप माफिया बताया जाता है. उसे रेलवे के स्क्रैप चोरी मामले में पांच बार गिरफ्तार कर जेल भेजा जा चुका है. छह माह पूर्व आरपीएफ ने सीनी से उसे गिरफ्तार कर जेल भेजा था. लेकिन जेल से छूटने के बाद पुनः स्क्रैप चोरी के धंधे में लिप्त हो गया.

चाईबासा में बिरसा ताइक्वांडो अकादमी का समर कैंप शुरू

चाईबासा । बिरसा इंडोर स्टेडियम के परिसर में बिरसा ताइक्वांडो अकादमी के तत्वावधान में 16वां समर कैंप की शुरुआत की गई. इसका उद्घाटन जिला परिषद सदस्य राजश्री सावैयां ने किया.

इस अवसर पर खिलाड़ियों ने अतिथियों के समक्ष ताइक्वांडो की विभिन्न विधा का प्रदर्शन किया. अतिथियों ने ताइक्वांडो की ग्रेडिंग परीक्षा में सफल खिलाड़ियों पलक कुमारी, जुलियस आल्डा, चुंबरु बिरूवा, सौरभ नंदी एवं सन्नी कुमार को अतिथियों के हाथों बेल्ट प्रदान किया. उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले खिलाड़ियों को प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया.

चक्रधरपुर के उलीडीह में ग्रामीण मुंडा को बाइक सवार ने मारी गोली

- अनुमंडल अस्पताल में इलाज के बाद एमजीएम रेफर

संवाददाता । चक्रधरपुर

चक्रधरपुर-चाईबासा मुख्य मार्ग के उलीडीह के पास ग्रामीण मुंडा दीपक बोदरा के पीठ में गोली मारकर दो युवक फरार हो गये. बताया जाता है कि दीपक बोदरा चक्रधरपुर-चाईबासा मुख्य मार्ग उलीडीह के समीप सड़क किनारे पत्तलपोड़ा मीट बेचने का काम करता है. शनिवार को वह अपने दुकान में पत्तलपोड़ा मीट बेच रहा था. इसी दौरान अपाची मोटरसाइकिल पर सवार होकर आये दो युवक ने दीपक बोदरा की पीठ में गोली मारकर फरार हो गये. दीपक बोदरा की पीठ में गोली लगी है. गोली उसके पीठ में फंस गई है.

घटना के समय दीपक बोदरा की मां बगल के दुकान में हड़िया बेच रही थी. गोली चलने की आवाज सुनकर वह भी मौके पर पहुंची. घटना के बाद स्थानीय लोगों के सहयोग से दीपक बोदरा को इलाज के लिए चक्रधरपुर के अनुमंडल अस्पताल पहुंचाया. वहां प्राथमिक इलाज के बाद जमशेदपुर के एमजीएम अस्पताल रेफर कर दिया गया. घटना के बाद एएसपी पारस राणा, चक्रधरपुर थाना प्रभारी राजीव रंजन अनुमंडल अस्पताल पहुंचकर मामले की जांच पड़ताल में जुट गये. घटना की सूचना पाकर बड़ी संख्या में लोग चक्रधरपुर अनुमंडल अस्पताल पहुंचे थे.

चक्रधरपुर अनुमंडल अस्पताल में गोली लगने से घायल दीपक बोदरा

खड़े टेलर में ट्रक ने मारी पीछे से टक्कर, चालक की मौत

संवाददाता । बहरागोड़ा

बहरागोड़ा थाना क्षेत्र के कालियाडिंगा अवस्थित एनएच 18 के फ्लाईओवर के पर शुक्रवार की रात्रि खड़े ट्रेलर (OD11AA3219) में पीछे से ट्रक ने धक्का मार दिया. ट्रक (JH01EQ5224) रांची की ओर जा रहा था. इस घटना में ट्रक का चालक रांची निवासी आसिफ अंसारी (30) की मौत हो गई. ट्रक का सह चालक घायल है. जानकारी के अनुसार कोलकाता के धुलागड़ से माल लोड करके रांची जाने के क्रम में फ्लाईओवर के ऊपर खड़े ट्रेलर के पीछे जाकर टकरा गया. इससे चालक आसिफ अंसारी तथा सहचालक शमशाद अंसारी केबिन में बुरी तरह से फंस गए. मौके पर पहुंची पुलिस ने चालक तथा सहचालक को निकाल कर सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र पहुंचाया. वहां इलाज के दौरान चालक ने दम तोड़ दिया. शनिवार को पुलिस लाश को अपने कब्जे में लेकर पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया.

मासिक लोक अदालत में 246 मामलों का निष्पादन

चाईबासा । जिला विधिक सेवा प्राधिकार पश्चिमी सिंहभूम के तत्वावधान में स्थानीय सिविल कोर्ट परिसर में प्रधान जिला एवं सत्र न्यायाधीश विश्वनाथ शुक्ला की अध्यक्षता में शनिवार को मासिक लोक अदालत का आयोजन किया गया. इस दौरान गठित कुल 11 बेंचों में मामलों की सुनवाई करते हुए कुल 246 वादों का सफल निष्पादन किया गया तथा 196900 रुपए राशि का समायोजन भी हुआ. प्राधिकार के सचिव राजीव कुमार सिंह ने बताया कि मासिक लोक अदालत विभिन्न प्रकार के वादों को सुलझाने का एक सक्षम और सुलभ माध्यम है. इसमें लोग अपने सुलहनीय मामलों के त्वरित निष्पादन के लिए अपील कर सकते हैं.

टोंटो के पुरनापानी मोदीगुटु में सड़क हादसा, दो युवकों की मौत

संवाददाता । चाईबासा

टोंटो प्रखंड के पुरनापानी में शुक्रवार की देर रात हाट से तेज गति से लौटते समय नोदी गुटु के पास सड़क दुर्घटना हुई. इसमें दो युवक की मौत हो गई. सड़क किनारे दोनों युवक गिरा हुआ था. सड़क पर खून से लथपथ देख राहगीर ने पुलिस को सूचना दी. इसके बाद पुलिस घटनास्थल पर पहुंची और दोनों युवक को सदर अस्पताल चाईबासा पहुंचाई. वहां पोस्टमार्टम करने के पश्चात परिजनों की खोजबीन की जा रही है.

पुलिस ने संभावना जताई कि बताया कि मोटरसाइकिल से तेज गति से पुल से सामने टकराने से दुर्घटना हुई होगी. सिर पर गंभीर चोट आने के कारण रक्त का बहाव अधिक हुआ. इसकी वजह से मौके पर ही दोनों युवक की मौत हो गई.

उल्लेखनीय है कि इस सड़क पर यहां लगातार दुर्घटना होते रहती है. बताया जाता है कि दोनों युवक नशे में धुत थे.

असुविधा आदित्यपुर में नागरिक सुविधाओं से जूझ रही बड़ी आबादी, निगम बेपरवाह

पेयजल संकट से हलकान, बजबजाती नाली से परेशान

हजार रुपये टैंकर तक खरीद रहे पानी

संवाददाता । आदित्यपुर

आदित्यपुर नगर निगम क्षेत्र में पेयजल संकट गहराता जा रहा है. यहां के लोग पानी खरीद कर प्यास बुझाने को मजबूर हैं. वर्तमान में 1000 लीटर पानी का टैंकर आम लोगों को 600 से 1000 रुपये में मिल रहा है.

बता दें कि नगर निगम प्रशासन ने इस गर्मी पर्याप्त मात्रा में किराए पर टैंकर लेकर चिन्हित इलाकों में जलापूर्ति करने का दावा किया था, जो खोखला साबित हो रहा है. सबसे बुरा हाल उन वार्ड का है, जहां पाइप लाइन जलापूर्ति की व्यवस्था नहीं है. इस वजह से आम जनता को काफी समस्या का सामना करना पड़ रहा है. बताया जाता है कि वर्तमान समय में भीषण गर्मी पड़ रही है. ऐसी स्थिति में भूगर्भ जलस्तर काफी नीचे हो गया है. इससे बोरिंग सूख गए हैं. कई लोगों ने तो 4 बार बोरिंग करवा रखा है, लेकिन इसके बावजूद उन्हें पानी नहीं मिल रहा है. वहीं जिन इलाकों में पाइप लाइन जलापूर्ति की व्यवस्था है वहां के लोग दो वक्त के पेयजल की मांग कर रहे हैं, लेकिन दुर्भाग्य से अभी तक महज एक वक्त का भी पेयजल काफी मुश्किल से नसीब हो रहा है. वहीं दूसरी ओर आदित्यपुर नगर निगम के पदाधिकारी आम जनता के पेयजल की समस्या को सुनने को तैयार ही नहीं हैं. वे केवल टैक्स वसूली करने का नियम बनाने में व्यस्त हैं.

बता दें कि आदित्यपुर में जो वृहद जलापूर्ति की योजना निर्माणाधीन है उससे अगले वर्ष 2024 जुलाई से जलापूर्ति होने की संभावना है. अगर सब कुछ ठीक ठाक रहा तो यह योजना सफलीभूत होगी और लोगों को गर्मियों में होने वाली जलापूर्ति की समस्या से राहत मिलेगी.

किरीबुरू में पाइप लाइन से बर्बाद हो रहा पानी

किरीबुरू । सेल, किरीबुरु की डालमिया फिल्टर प्लांट से मुर्गापाड़ा स्थित जलमीनार तक आयी मुख्य पानी पाइप लाइन ओड़िसा सीमा क्षेत्र में क्षतिग्रस्त होने से काफी पानी बर्बाद हो रहा है. यह पाइप लाइन जमीन के ऊपर से आया है. इस पाइप लाइन को असामाजिक तत्व ने तोड़ दिया या स्वतः क्षतिग्रस्त हुआ है, यह स्पष्ट नहीं है. इसी पाइप लाइन के सहारे आने वाली पानी को मुर्गापाड़ा स्थित जलमीनार में स्टॉक कर वहां से सेल की किरीबुरु आवासीय क्षेत्रों में पेयजल आपूर्ति की जाती है.

छह माह से नहीं हुई नालियों की सफाई

- कई वार्ड के स्ट्रीट लाइट भी महिनों से खराब

आदित्यपुर । आदित्यपुर नगर निगम क्षेत्र में कई वार्ड में नालियों की सफाई नहीं की जा रही है. इससे नालियां बजबजा रही हैं. कई वार्ड के स्ट्रीट लाइट महीनों से खराब हैं. इन समस्याओं का समाधान नहीं होने से आम लोगों में आक्रोश बढ़ रहा है.

एक साल पूर्व नगर निगम का बोर्ड भंग हो गया है. इसके बाद से पार्षद जवाबदेही से पल्ला झाड़ रहे हैं. वहीं दूसरी ओर नगर निगम यूजर्स चार्ज के नाम पर प्रत्येक घरों से होल्डिंग टैक्स के अलावा अलग से राशि वसूल रही है. वार्ड 17 में पेयजल संकट के साथ सफाई की भी समस्या है.

छह महीने से यहां नालियों की सफाई नहीं हुई है. इससे बीमारियों के फैलने का डर सता रहा है. लोग वार्ड के केयर टेकर से गुहार लगाते हैं, लेकिन समस्या का समाधान नहीं होता है. वार्ड संख्या 33 बंतानगर में एक माह से 18 स्ट्रीट लाइट खराब है. स्थानीय समाजसेवी राकेश सिंह ने एक माह पूर्व नगर निगम के कनीय अभियंता रितेश कुमार को इसकी जानकारी दी थी.

यही हाल लगभग अन्य वार्डों का है. स्ट्रीट लाइट नहीं जलने की वजह से लगातार चोरी हो रही है. आम लोग कहते हैं कि कम से कम बोर्ड एक्टिव था तो पार्षद उनकी समस्याओं को सुनकर हल करते थे.

न्यूज अपडेट

मुड़ियादल के किसान से 60 हजार की साइबर ठगी

चक्रधरपुर । साईबर ठग नये-नये तरीके अपनाकर लोगों की मेहनत की गाढ़ी कमाई पर सेंध कर रहे हैं. जानकारी के अभाव में कई लोग इनका शिकार हो रहे हैं. ताजा मामला चक्रधरपुर थाना क्षेत्र के आसनतलिया पंचायत के मुड़ियादल गांव का है.साइबर ठगों ने चक्रधरपुर प्रखंड के कृषि विभाग का अधिकारी बताकर मुड़ियादल के किसान भास्कर महतो से 60 हजार रुपये की ठगी कर ली. वहीं बैंक खाते से रुपयों की ठगी होने से परेशान किसान भास्कर महतो ने शनिवार को चक्रधरपुर थाना पहुंचकर मामले की जानकारी दी.

हत्या के दोषी दिलीप सुरीन को आजीवन कारावास

किरीबुरू । चाईबासा कोर्ट ने हत्या का दोषी पाये जाने पर दिलीप सुरीन को आजीवन कारावास और 20 हजार रुपये जुर्माना की सजा सुनाई है. सजा चाईबासा न्यायालय प्रधान जिला एवं सत्र न्यायाधीश की अदालत ने सुनाई है. दिलीप सुरीन सोनुवा थाना के भालूमारा (शंकोसाई) निवासी स्व. सिधु सुरीन का बेटा है. इस संबंध में पुलिस अधीक्षक आशुतोष शेखर ने बताया कि दिलीप सुरीन के विरूद्ध दिनेश दिग्गी उर्फ चोकोय दिग्गी की धारदार हथियार से हत्या करने का मामला दर्ज किया गया था.

संबलपुर से भटक कर देवगांव पहुंचा बालक

चक्रधरपुर । ओड़िसा के संबलपुर से भटक कर 13 वर्षीय बालक चक्रधरपुर के केन्दो पंचायत के देवगांव पहुंच गया. उसे ग्रामीणों ने शनिवार को चक्रधरपुर थाना के पुलिस अधिकारियों को सौंप दिया, बताया जाता है कि किसी ट्रेन से चक्रधरपुर उतरकर भटकते हुये देवगांव पहुंच गया. ग्रामीणों ने इसकी जानकारी महिला समूह चलाने वाली सामाजिक महिला लखी मुंडा को दी. लखी मुंडा को बच्चे ने बताया कि उसका नाम जीत सिंह है और वह ओड़िसा के संबलपुर जिला के जमुना गांव का रहने वाला है. उसके पिता का नाम बुधराम सिंह है.

ब्रीफ खबरें

मोबाइल छीनकर भाग रहे तीन धराए

हजारीबाग। कोरां पुलिस ने ग्रामीणों के सहयोग से मोबाइल छीनकर भाग रहे तीन बदमाशों को गिरफ्तार किया. पकड़े गए आरोपी अभिजीत कुमार, अमित कुमार दुबे और रणधीर कुमार हैं. तीनों आरोपी हजारीबाग के रहने वाले हैं इस संबंध में कोरा पुलिस ने बताया कि रात में सूचना प्राप्त हुई कि तीन व्यक्ति एक बाइक पर सवार होकर फोन झपटकर भाग रहें है. जिस पर त्वरित कार्रवाई करते हुए स्थानीय लोगों के सहयोग से बाइक सवार तीनों व्यक्तियों को धर दबोचा गया. उनके पास से एक मोबाइल एवं अन्य दो मोबाइल को बरामद करते हुए बाइक जब्त किया गया.

मोबाइल छिनतई मामले में एक हुआ गिरफ्तार

हजारीबाग। बड़ा बाजार पुलिस ने नया बस स्टैंड के पास छिनतई करने वाले एक आरोपी को गिरफ्तार किया. उसके पास से चोरी का तीन मोबाइल बरामद किया गया. यह जानकारी बड़ा बाजार थाना प्रभारी बिट्टू रजक ने दी. उन्होंने बताया कि बंडा बाजार ओपी में 25 मई को छिनतई के संबंध में एक शिकायत दर्ज की गई. यह मामला अनीश रविदास, पिता प्रदीप रविदास, ग्राम नवाडीह कला, थाना पदमा ओपी जिला हजारीबाग ने दर्ज कराया था. उक्त मामले में कहा गया था कि दो बाइक सवार बदमाश उनका मोबाइल छीन कर भाग गए.

पुलिस ने चार मवेशी पकड़े, तस्कर फरार

कटकमसाडी। कटकमदाग प्रखंड क्षेत्र में लगातार जानवरों की चोरी की जा रही है. ताजा मामला गादोखर पंचायत भवन के पास का है. जहां गरीब मस्जिद के पास ओपी पेलावल पुलिस ने सुबह जांच पड़ताल के क्रम में लाल रंग के टाटा सूमो को पकड़ा. लेकिन गो तस्कर तीन गाय और एक बछड़ा छोड़कर भागने में सफल रहे. ग्रामीणों ने बताया कि ओपी पेलावल पुलिस ने तीन गाय और एक बछड़ा को स्थानीय लोगों के बीच बांट दिया और वाहन को थाना ले जाया गया. इस संदर्भ में थाना प्रभारी ने बताया कि जांच पड़ताल किया जा रहा है और गाड़ी मालिक पर कार्रवाई की जाएगी.

चोरी मामले में पुलिस ने तीन को किया गिरफ्तार

हजारीबाग। सदर थाना पुलिस ने तीन फरवरी को संत कोलंबस कॉलेज के सामने से खड़ी बोरिंग गाड़ी से सामान चोरी करने वाले तीन आरोपियों को गिरफ्तार कर लिया. वहीं चोरी का सामान भी बरामद किया. इस मामले में पांच लोगों को हिरासत में लिया गया. सदर थाना पुलिस ने दारू से चोरी गए सामानों की बरामदगी भी की. हिरासत में लिए गए लोगों से पूछताछ चल रही है. उनकी निशानदेही पर कई जगहों पर छापेमारी चल रही है. इसलिए पुलिस फिलहाल आरोपियों के नाम का खुलासा नहीं किया है. आज पुलिस चोर गिरोह के शातिर सदस्यों के नाम का खुलासा कर सकती है.

चरही घाटी में ट्रक पलटा चालक व खलासी बचे

चरही। चरही थाना क्षेत्र के यूपी मोड़ घाटी में शनिवार सुबह लगभग 7: 30 बजे एक ट्रक के पलट जाने से इसके चालक और उपचालक बाल-बाल बच गए. जबकि ट्रक के कल-पुर्जे अलग-अलग हो गए. वाहन में लदे प्लाईवुड सड़क पर बिखर गए. जानकारी के अनुसार ट्रक नं. एचआर 45बी/0088 बिहार से प्लाई को लादकर ओडिशा जा रहा था. चरही के यूपी मोड़ घाटी में तेज घुमावदार सड़क होने के कारण ट्रक का संतुलन बिगड़ गया. जिस कारण ट्रक घाटी में पलट गया. ट्रक पलटने से प्लाई सड़क पर बिखर गया. ट्रक के सारे कल-पुर्जे और बॉडी अलग-अलग हिस्सों में बंट गए.

बाइक लाने गया युवक अब तक नहीं लौटा घर

झूमरीतिलैया। तिलैया थाना क्षेत्र के आदर्श नगर निवासी अनीता देवी ने अपने पुत्र को खोजने की गुहार लगाई है. अनीता ने तिलैया थाना में आवेदन देकर पुलिस से पुत्र राहुल कुमार के खोजबीन की गुहार लगाई है. अनीता ने बताया कि उनका पुत्र टीओपी गली में स्थित तेल की मिल में काम करता था. वह पिछले कुछ दिनों से परेशान दिख रहा था. 19 मई को वह अपनी बाइक से कम पर गया था. शाम में वापस घर लौटने पर बाइक लेकर नहीं लौटा. इसके बाद जब परिजनों ने बाइक के संबंध में पूछताछ किया तो बाइक अपने दोस्त को देने की बात कही.

अंग्रेजों के समय के बरकाकाना पावर हाउस भवन का फर्श टूट चुका है, दीवारों में दरारें पड़ गई हैं

प्रबंधन की उपेक्षा का शिकार है पावर हाउस: ज्याऊद्दीन

संवाददाता । रामगढ़

पावर हाउस बरकाकाना के रेलकर्मी अपनी ड्यूटी पूरे उत्साह के साथ करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं. लेकिन जहां वे काम करते हैं वहां की स्थिति ठीक नहीं है. मामला पावर हाउस भवन से जुड़ा है. दरअसल पावर हाउस भवन की स्थिति ऐसी है कि कभी भी गिर सकती है.

पूरे कैम्पस में बिजली से संबंधित उपकरण बाहर खुले में बिखरे हैं. कुछ वर्ष पहले विभिन्न कालोनियों के लिए अलग-अलग तरीके से लगाए गये पैनलों में से अधिकतर उपकरण खराब हो चुके हैं. एक ही पैनल में कई कालोनियों और डिपू के लिए विद्युत आपूर्ति के कनेक्शन कर दिए गए हैं जो काम करने वाले कर्मियों के लिए खतरनाक है. साथ ही, एक क्षेत्र में शट डाउन लेने पर उसमें जोड़े गए अन्य क्षेत्रों के लिए भी दी गई विद्युत आपूर्ति कट जाती है. जिससे रेलवे आवासों में रेलकर्मियों और उनके आश्रितों को इस भीषण गर्मी में काफी परेशानी उठानी पड़ती है.

पिछले दिनों सहायक मंडल अभियंता बरकाकाना परमानन्द प्रसाद के साथ ईसीआरकेयू के अपर महामंत्री सह धनबाद मंडल के पीएनएम प्रभारी मो ज्याऊद्दीन ने बरकाकाना के पावर हाउस का संयुक्त निरीक्षण किया था. जानकारी देते हुए बताया था कि यूनियन के नेतृत्व में स्थानीय रेलकर्मियों के आंदोलन के पश्चात बरकाकाना में स्वतंत्र रूप से 33 केवी विद्युत सब स्टेशन द्वारा डीवीसी से सीधे विद्युत आपूर्ति की व्यवस्था कराई गई थी. लेकिन वर्तमान में पावर हाउस प्रबंधन की उपेक्षा का शिकार हो गया है. यह भवन अंग्रेजों के समय का है जो पूरी तरह से जर्जर हो चुका है. फर्श टूट चुके हैं और दीवारों में दरारें आ गई हैं.

पीएनएम प्रभारी ने कहा कि पैनल रूम में छत से पानी चूता था. जिसे यूनियन के प्रयास से ठीक कराया गया है, लेकिन अभी भी पैनल रूम का फर्श टूटा हुआ है. कनेक्शन के लिए तारों को यूं ही जैसे तैसे जोड़ कर खुला छोड़ दिया गया है.

भवन जर्जर

- जान जोखिम में डालकर रेलकर्मी करते हैं यहां ड्यूटी
- कर्मचारियों के बैठने के लिए कोई फर्नीचर नहीं है
- रिपेयरिंग के लिए स्टोर एवं रिपेयरिंग रूम नहीं है

दनुवा घाटी में ट्रक पलटने से चालक की मौत, खलासी गंभीर

संवाददाता। चौपारण

शुक्रवार देर रात प्रखंड के दनुवा घाटी के हथिया बाबा मंदिर के आगे घाटी मे बड़ा हादसा हुआ. हादसे में ट्रक चालक की मौत हो गयी और खलासी गम्भीर रूप से घायल हो गया. मृतक चालक की पहचान गोबिंद यादव, पिता रामप्रसाद यादव राधा कृष्णमन्दिर, गुर्जरखेड़ी, शाहजहांपुर, मध्यप्रदेश के रूप में हुई. वहीं खलासी संजय यादव गम्भीर अवस्था में घायल हो गया. घटना के सम्बंध में बताया जाता है कि जीटी रोड में हथिया बाबा के आगे घाटी में अचानक एक ट्रक का ब्रेक फेल हो गया. ट्रक अनियंत्रित होकर डिवाइडर से टकराकर पलट गया. जिससे वाहन का अगला हिस्सा पूरी तरह से दब गया. जिससे चालक का घटना स्थल पर ही मौत हो गई. सूचना के बाद घटना स्थल पर पहुंचे एनएचएआई एम्बुलेंस ने तत्काल चौपारण पुलिस को इसकी सूचना दी. सूचना के बाद घटना स्थल पर पहुंची चौपारण पुलिस ने चालक के शव को वाहन से बाहर निकाला. पुलिस ने बताया कि दुर्घटना की सूचना परिजनों को दे दी गई है. वहीं शव को पोस्टमार्टम के लिए हजारीबाग सदर अस्पताल भेज दिया गया.

चुरचू प्रखंड के कई गांवों में पिछले एक वर्ष से पेयजलापूर्ति ठप

दम तोड़ती नजर आ रही है हर घर नल जल योजना

संजय मुर्मू । चरही/चुरचू (हजारीबाग)

पानी नहीं

- जमडीहा में जलमीनार का निर्माण किया गया है
- पानी सीधे खदान से ग्रामीणों के घरों तक पहुंचती है
- गर्मी में कुआं का पानी भी अब सूखने लगा है

चुरचू प्रखंड के कई गांवों में पेयजल के लिए हाहाकार मचा हुआ है. चुरचू प्रखंड मुख्यालय क्षेत्र के कई गांवों में पिछले एक वर्ष से पेयजल आपूर्ति ठप है. ग्रामीणों को पेयजल के लिए दर-दर भटकना पड़ रहा है. ज्ञात हो कि प्रखंड मुख्यालय से लगभग तीन किमी कि दूरी पर स्थित जमडीहा गांव में जलमीनार का निर्माण किया गया है. जिससे चुरचू के सात गांवों में जलापूर्ति कि जानी थी.

बताते चलें कि इन क्षेत्रों में कुछ दिनों तक जलापूर्ति की गई. उसके बाद लगभग एक वर्ष से पेयजल आपूर्ति बंद है. ग्रामीणों का आरोप है कि पेयजल विभाग पानी की आपूर्ति मुहैया करवाने में नाकाम साबित हो रही है. जल जीवन मिशन योजना के तहत हर घर नल जल योजना से चुरचू समेत बाकी आठों पंचायतों में ग्रामीण क्षेत्रों में पीने योग्य जल आपूर्ति की जानी है.

बता दें कि पूरे बहेरा पंचायत समेत चरही व चनारो पंचायत में ग्रामीण जलापूर्ति योजना के तहत निर्मित 5.50 एमएलडी की क्षमता वाले वॉटर प्यूरिफिकेशन प्लांट का निर्माण किया गया है. यह प्लांट पंचायत के वार्ड नंबर एक में स्थित है. यहां पर पानी की आपूर्ति सीसीएल के बंद पड़ी पुराने खदान 42 नंबर से होती है. योजना के तहत पंचायत के कुछ घरों में पानी का कनेक्शन तो दे दिया गया है. लेकिन ढाई साल बीत जाने के बाद भी ग्रामीणों के लिए पीने लायक पानी उपलब्ध नहीं हो सका है. पानी कि सप्लाई कभी एक दो हफ्ते में एक दो बार की जाती है. लेकिन यह पानी पीने योग्य नहीं हैं. पानी सीधे खदान से ग्रामीणों के घरों तक पहुंचती है.

मगर यह पानी बिना प्यूरिफिकेशन के ही दी जाती है. जिससे ग्रामीण इस पानी को सिर्फ धोने और साफ-सफाई के लिए ही प्रयोग करते हैं. इस भीषण गर्मी में जहां सभी जगहों पर पानी का जलस्तर नीचे चला गया है. जिससे चापनल से लेकर कुआं का पानी भी सूखने लगा है. ऐसे में लोग पेयजल के लिए तरस गए हैं. इस योजना के तहत चुरचू के छह गांव में पानी आपूर्ति करनी है. जिसमें नगड़ी, लासोद, बोदरा, जमडीहा, खुरंडीह और चुरचू शामिल है. लेकिन दुर्भाग्यवश चार वर्ष से पानी की आपूर्ति बंद है.

पानी का टंकी बोदरा में बना हुआ है. पानी का सप्लाई कोनार नदी से करनी है. इसी योजना के तहत चुरचू ईस्ट में दस गांव अंगो, लोठे, गोंदवार, ओरिया, पोटमो, सरिया, धामनसरिया गांव शामिल है. लेकिन यहां पर भी पानी की आपूर्ति बंद है. गोंदवार गांव में तो पानी का एक बूंद भी नहीं मिला है. योजना के तहत चुरचू वेस्ट का 15 गांव शामिल है. जिसमें बारहगांव भी है. विभाग और संवेदक की लापरवाही के कारण पानी का वितरण सही तरीके से नहीं हो पा रहा है.

चुरचू मुखिया पूनम बेसरा ने बताया कि चुरचू में अभी पानी का सप्लाई ही चालू नहीं हो पाया है. इस योजना से चुरचू के बारह गांवों को जोड़ा गया है. लेकिन यह पूरी तरह फेल है. कहीं पानी चलता है तो कई जगहों पर पानी का कनेक्शन ही नहीं दिया गया है. अंगो मुखिया सीतामुनी देवी ने बताया कि अंगो में कभी- कभी पानी चलता है.

ओबरी व करगी में पानी का कनेक्शन तक नहीं दिया है

इसी योजना के तहत चुरचू में कार्य करने के लिए संवेदक ने बगैर कार्य किए ही पैसों क निकासी कर ली है. इससे चुरचू के छह गांव खुराणडीह, जमडीहा, लासोद, बोदरा, नगड़ी और चुरचू इस योजना से पूरी तरह वंचित रह गए हैं. इन गांवों में पीएचडी विभाग द्वारा पूर्व में बोदरा में कई सालों से टंकी बनकर तैयार है. अब इन गांवों के लोग दोनों योजना से भी वंचित रह गए हैं. वही चुरचू के ही सिमराबेड़ा, ओबरी, बेलवातरी, पिपराबेड़ा व करगी में तो पानी का कनेक्शन तक नहीं दिया गया है. इसमें चुरचू गांव भी शामिल हैं. जहां पर प्रखंड कार्यालय सह अंचल कार्यालय, अस्पताल से लेकर सीआरपीएफ कैंप है. आलम यह है कि जल जीवन मिशन योजना का हर घर नल जल योजना सिर्फ नाम के लिए ही रह गया है. योजना सिर्फ सरकारी कागजों में ही पास हो कर रह गया है. इस संबंध में बहेरा पंचायत मुखिया देवकी महतो ने कहा कि पानी की आपूर्ति को लेकर मैंने कई बार विभाग को लिखित एवं मौखिक रूप से अवगत कराए हैं. साथ ही पानी आपूर्ति करने वाले संवेदकों को कई बार इसमें सुधार करने के लिए कहा है. लेकिन कुछ नहीं हुआ. योजना के नाम पर विभाग और संवेदक चुप्पी साधे हुए है.

जगन्नाथ रथयात्रा की तैयारी शुरू

संवाददाता। चौपारण

झारखंड-बिहार में सर्वाधिक चर्चित रथयात्रा चौपारण में आयोजित किए जाने की तैयारी आरंभ कर दी गई है. इसे लेकर श्री भक्ति वेदांत शिक्षालय के संस्थापक सह इस्कॉन के धर्म गुरु डॉ केशवानंद प्रभु के निर्देशन में सियरकोनी बैधनाथ नगर स्थित श्री जगन्नाथ मंदिर परिसर में धर्मसभा का आयोजन किया गया. सभा में कोलकाता इस्कान टेंपल के आयोजन विशेषज्ञ कुमार लीला प्रभु विशेष रूप से मार्गदर्शन के लिए उपस्थित हुए.

धर्मसभा में बीते साल आयोजित हुए विशाल रथयात्रा की भव्यता पर चर्चा तथा आगामी सात जुलाई को वृहद आयोजन के मैनेजमेंट संबंधित विभिन्न निर्णय लिए गए. डॉ केशवानंद प्रभु ने कहा कि आनेवाले सालों में चौपारण की धरती से भक्ति और परमार्थ से धर्म-कर्म के साथ अध्यात्म का विस्तार होगा. बताया कि इस साल रथयात्रा के आयोजन में लाख से अधिक श्रद्धालुओं की उपस्थिति होने की संभावना है. इसे लेकर भक्तगण तथा गृहस्थ ईटखोरी, चौपारण, मयुरहंड, चौपारण आदि क्षेत्रों में घर-घर घूमकर प्रचार कर रहे हैं.

सात जुलाई को भगवान जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा को रथ पर बिठाकर भक्तगण रस्सी से खींचकर बिगहा हनुमत मंदिर स्थित मौसीबाड़ी गढकाली माता के मंदिर पहुंचायेंगे. आयोजन की भव्यता को देखकर कोलकाता इस्कान टेंपल से जुडे रथयात्रा विशेषज्ञ भक्त कुमार लीला प्रभु को पूरे आयोजन की जवाबदेही दी गई है. उन्होंने कहा कि इस बार का आयोजन ऐतिहासिक होगा. पूरी तन्मयता से आयोजन को ऐतिहासिक करेंगे. विशेषकर रथयात्रा विशिष्ट होगा. जिसमें देश विदेश के कृष्ण भक्त जुटेंगे. वहीं धर्म सभा को संबोधित करते हुए समाजसेवी हरिश्चंद्र सिंह ने कहा कि परमार्थ से पुरुषार्थ की बड़ी कहानी है चौपारण में रथयात्रा की.

महिला लापता, रामगढ़ थाना में सनहा हुआ दर्ज

रामगढ़। छोटकी लारी की एक महिला शुक्रवार को रामगढ़ स्थित गोरियारी बागी से लापता हो गई है. इस बाबत लापता हुई महिला के पति सिकंदर नायक द्वारा रामगढ़ थाना में अपनी पत्नी की गुमशुदगी का मामला दर्ज कराया है. जिसके अनुसार उसका कहना कि मैं सुबह 10 बजे अपनी पत्नी सुनीता कुमारी 32 वर्ष, के साथ भुरकुंडा से अपने घर वापस लौट रहा था. इसी दौरान गोरियारी बागी में कुछ काम करने के दौरान उसे वहीं पर रुकने को कहा. थोड़ी देर बाद वापस लौटा तो देखा मेरी पत्नी वहां नहीं थी. काफी खोजबीन के बावजूद वह नहीं मिली. वह बोलने में असमर्थ है. जिसके कारण दो दिनों तक काफी खोजबीन किया. अंततः उन्होंने पुलिस से पत्नी को ढूंढने की गुहार लगायी है.

कान्यकुब्ज ज्योतिषी ब्राह्मण महासमिति की श्रद्धांजलि सभा

संवाददाता। हज़ारीबाग/इचाक

कान्यकुब्ज ज्योतिषी ब्राह्मण महासमिति झारखंड प्रदेश की कमेटी ने श्रद्धांजलि सभा आयोजित कर दिवंगत पं गोपाल पाण्डेय की माता को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित किया. दिवंगत आत्मा की शांति सद्गति एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए एक मिनट का मौन रखकर पुष्पांजलि अर्पित किया गया. पं गोपाल पांडेय की माता के द्वादशा श्राद्ध कार्यक्रम में कान्यकुब्ज ज्योतिषी ब्रह्मण महासमिति झारखंड प्रदेश के लोग उपस्थित हुए. दिवंगत को श्रद्धांजलि अर्पित कर शोक संतप्त परिवार को हिम्मत देने के लिए सभी कान्यकुब्ज ज्योतिषी ब्रह्मण महासमिति झारखंड प्रदेश के सभी लोग उपस्थित हुए.

पार्किंग टेंडर को अब सरेंडर करना चाह रहे हैं ठेकेदार

संवाददाता। हजारीबाग

नगर निगम के पार्किंग ठेकेदार इन दिनों परेशान हैं और अब सदर अस्पताल में पार्किंग का काम करना नहीं चाह रहे हैं. वह वह ठगा महसूस कर रहे हैं. अपना पार्किंग टेंडर नगर निगम को वापस करने की बात कह रहे हैं. दरअसल यह मामला हजारीबाग शेख भिखारी मेडिकल कॉलेज अस्पताल की पार्किंग का है. यहां नगर निगम पहली बार सदर अस्पताल कैंपस में पार्किंग के लिए टेंडर करवायी थी.

पहली बार विनोद सिंह को मिली. जिसके बाद उनकी अवधि समाप्त हो गई और अप्रैल महीना में फिर से टेंडर करवाया गया जो 4.26 लाख में आलिद अख्तर को दिया गया. लेकिन दो महीने में वह ऊब गए. अब वह सदर अस्पताल की पार्किंग टेंडर को सरेंडर करने का मन बना लिये हैं. इस संबंध में पार्किंग इंचार्ज सोहेल अख्तर ने बताया कि हजारीबाग सदर अस्पताल की पार्किंग बेकार है. यहां की पार्किंग समझ से परे है. प्रत्येक दिन कुछ न कुछ विवाद होता रहता है. यहां बेबश लोग आते हैं. उनसे पैसा लेने का मन तो नहीं करता है. लेकिन हमलोग भी विवश हैं. कई लोग तो ऐसे भी आते हैं, जिनको देखकर दया आती है.

सुरेखा भाई पब्लिक स्कूल में समर कैंप

चौपारण। चौपारण प्रखंड के नवभारत जागृति केंद्र द्वारा संचालित सुरेखा प्रकाश भाई पब्लिक स्कूल में दो दिवसीय समर कैंप का आयोजन किया गया. समर कैंप का उद्घाटन प्राचार्या रीना पाण्डे ने दीप प्रज्ज्वलित कर शुभारंभ किया. उन्होंने अपने भाषण में विद्यालय परिवार को बताया कि समर कैंप के आयोजन से बच्चे एक दूसरे से इंटरफेस होते हैं. दोस्ती बढ़ती है, कॉन्फिडेंस लेवल बढ़ता है. इस कैंप में बच्चों ने मेडिटेशन, योग, आर्ट एंड क्राफ्ट, ड्राइंग, नृत्य, संगीत, रस्सा खींच एवं फूड विदाउट फायर एक्टिविटी प्रस्तुत किया. इस कार्यक्रम को सफल बनाने में विद्यालय के शिक्षक राकेश रंजन, शिक्षिका अमृता मैसी, आशुतोष कुमार, आनंद कुमार एवं दसवीं की छात्राओं का सराहनीय योगदान रहा. इ

जनजाति के मूल अर्थ को समझना आवश्यक: डॉ मुनीष गोविंद

संवाददाता। हजारीबाग

होटल श्री विनायक सभागार में शनिवार को एकदिवसीय राष्ट्रीय सेमिनार का आयोजन हुआ. इसका आयोजन आईसेक्ट विश्वविद्यालय, हजारीबाग के आईक्यूएसी के तत्वावधान में विश्वविद्यालय के वाणिज्य एवं प्रबंधन विभाग की ओर से भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद् (आईसीएसएसआर -ईआरसी) द्वारा किया गया.

यह सेमिनार "सस्टेनेबल डेवलपमेंट एंड सीएसआर : द रोल ऑफ ऑपर्च्युनिटीज फोर ट्राइबल कम्युनिटीज" विषय पर किया गया. बतौर मुख्य अतिथि डॉक्टर सीवी रमण विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार के कुलपति डॉ मुरारी लाल गौर, आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ पीके नायक, कुलसचिव डॉ मुनीष गोविंद, डीन एडमिन डॉ एसआर रथ, डीन एकेडमिक डॉ एमके मिश्रा, सेमिनार में शामिल बतौर मुख्य वक्ता विभावि की प्राध्यापिका डॉ जॉनी रूफीना तिर्की, आईसेक्ट विश्वविद्यालय के वोकेशनल निदेशक डॉ बिनोद कुमार सहित अन्य के हाथों दीप प्रज्ज्वलित कर कार्यक्रम की शुरुआत की गई.

मौके पर मुख्य अतिथि डॉ मुरारी लाल गौर ने ऐसे सेमिनार को लोगों और खासकर शोधार्थियों के लिए अहम बताया. कहा कि सभी समुदायों को सतत विकास की ओर ले जाने की सोच वाकई काबिल-ए-तारीफ है. लेकिन हमें यह भी समझने की जरूरत है कि जिस समुदाय के उत्थान के लिए जो नीतियां बनाई जा रही हैं, वह उस समुदाय के लिए अनुकूल है या फिर नीतियां उस पर थोपी जा रही हैं. जनजातीय समुदाय से संबंधित नीतियों को बनाने में इस पर गंभीरता से विचार किए जाने की जरूरत है.

आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलसचिव डॉ मुनीष गोविंद ने कहा कि जनजाति के मूल अर्थ को समझा जाना बेहद आवश्यक है. भूमि बेदखलीकरण, पुनर्वास, शिक्षा, स्वास्थ्य, वित्तीय समावेशन, वनाधिकार जैसे जनजातीय समुदाय के कुछ प्रमुख मुद्दे हैं, जिस पर नीतिगत और जमीनी स्तर पर नए दृष्टिकोण से विचार किए जाने की जरूरत है. विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ पीके नायक ने कहा कि इसमें कोई दो राय नहीं कि जनजातीय समुदाय आज भी भारतीय संस्कृति को बचाए रखा है. ऐसे में इस पूरे समुदाय का उत्थान आवश्यक है. उन्होंने कहा कि हालांकि सरकार की ओर से कई लाभकारी योजनाएं चलाई जा रही हैं, लेकिन इसका लाभ, लाभार्थी तक कितना पहुंच रहा है, इसपर भी विचार किए जाने की जरूरत है.

मनरेगा इचाक, कटकमदाग, कटकमसांडी, चुरचू व केरेडारी सहित कई पंचायतों में मशीन व ठेकेदार मार रहे हैं मजदूरों का हक

रजिस्टर में है मजदूरों का नाम, पर मशीन से किया जाता है सारा काम

शुभम संदेश एक्सक्लूसिव

प्रमोद उपाध्याय। हजारीबाग

सरकार की लाख कोशिशों के बावजूद भी मजदूरों को न तो उनका सही हक मिल पा रहा है और न भ्रष्टाचार पर अंकुश लग रहा है. हजारीबाग के विभिन्न प्रखंडों में मजदूरों के जॉब कार्ड पर ठेकेदारों ने कब्जा कर रखा है. ऐसे में वास्तविक हकदारों को रोजगार भी नसीब नहीं हो पा रहा है. उन्हें सौ-पचास देकर चलता कर दिया जाता है और उन्हीं के खाते की शेष रकम ठेकेदार अपने पॉकेट में डाल ले रहे हैं. जॉब कार्ड के अनुसार रजिस्टर में मजदूरों का नाम तो काम के दौरान दिखाया जाता है, लेकिन जमीनी हकीकत यह है कि मशीन से सारे काम कराए जाते हैं और हस्ताक्षर मजदूरों के लगाए जाते हैं.

हजारीबाग जिले के सदर प्रखंड, इचाक, कटकमदाग, कटकमसांडी, पदमा, चुरचु व केरेडारी सहित कई पंचायतों में मजदूरों का हक मशीन और ठेकेदार मार रहे हैं. बता दें कि सरकार ने मजदूरों को 100 दिन का रोजगार मिले, इसके लिए जॉब कार्ड दिया जाता है. मजदूरों की मजदूरी सीधे खाते में दी जाती है. लेकिन ठेकेदारों ने जॉब कार्ड जब्त कर उसका भी तरीका निकाल लिया है. मजदूर हक की एवज में कभी विरोध में स्वर नहीं उठाए, इसके लिए उन्हें बतौर प्रोत्साहन सरकार की ओर से दी जानेवाली कभी कोड़ी, तो कभी गैता देकर खुश रखने का प्रयास किया जाता है.

केस 1.. सदर प्रखंड के सखिया पंचायत स्थित जुलजूल के मजदूर धानू देवी, नीतू देवी, सुषमा देवी, सबिया देवी और रुकनी देवी ने बताया कि दो साल पहले लेबर कार्ड गांव के ही एक ठेकेदार लिए थे, जो आज तक वापस नहीं किए. कमाया हुआ पैसा लगभग 4000 रुपये नहीं दिये. वहीं महिलाओं का कहना है कि गांव के ही दो ठेकेदार हैं, जो मनरेगा का काम करते हैं. वह हमलोगों का लेबर कार्ड ले जाता है और अपने पास रखता है. फिर जेसीबी मशीन से काम करवाता है. खाता में जब पैसा आता है तो वह बैंक जाने का दावा बनता है और पैसा निकलवा कर खुद ले लेता है. हमलोगों को रोजगार नहीं मिल पाता है. यही कारण है कि घर में बैठे रहते हैं

केस 2.. सदर प्रखंड गुरहेत पंचायत के मजदूर रिंकी देवी, जगनी देवी, मंदोदरी देवी, जयंती देवी, मुनिया देवी, कर्मी देवी, तनु देवी, बबिता देवी और ललिता देवी ने बताया कि सरकार मजदूरों के लिए मनरेगा योजना चल रही है. लेकिन मुखिया हमलोगों को काम नहीं देता है और ठेकेदार जेसीबी मशीन से काम करवाता है. हमलोगों का जॉब कार्ड ठेकेदार के कब्जा में है. वह मशीन से काम करवा कर हमलोगों के खाता में पैसा मंगवाता है और खुद डकार जाता है. बबीता देवी ने यह भी बताया कि पूर्व के पंचायत सेवक ने कभी काम नहीं दिया और और मेरे खाते में 3000 रुपया आया था. जिसके लिए वह हम पर दबाव बनाने लगा. फिर जाकर कोर बैंक से पैसा निकाल कर पंचायत सेवा को दे दिया. बदले में हमको आने-जाने का किराया 200 रुपया दिया. महिलाओं ने यह भी कहा कि हम मजदूर को रोजगार नहीं मिल रहा है. गांव के ही एक भला व्यक्ति है जो तरबूज का खेती गांव में ही किया है. वही हमलोगों को 180 रुपया मजदूरी के तौर पर प्रत्येक दिन देता है. जिससे हमारा घर चल रहा है. अगर मनरेगा का काम करते तो हमारा मजदूरी 271 रुपया होता.

मजदूर परेशान

- रजिस्टर में मजदूरों का नाम काम के दौरान दिखाया जाता है
- मजदूरों को रोजगार मिले इसके लिए जॉब कार्ड दिया है

जेसीबी से काम करना गैरकानूनी है: डीडीसी

डीडीसी प्रेरणा दीक्षित ने कहा कि जेसीबी से काम करना गैरकानूनी है. पूर्व में भी ऐसी शिकायत आई थी. जिस पर कार्रवाई की जा चुकी है. इस मामले की जांच की जाएगी और पकड़े जाने पर दोषी पर सख्त कार्रवाई की जाएगी.

इनके जज्बे को सलाम

जोश

रांची

जमशेदपुर

धनबाद

गिरिडीह

रांची

झारखंड में तीसरे चरण का मतदान भी शांतिपूर्ण संपन्न

93 की किस्मत ईवीएम में कैद

झारखंड में तीसरे चरण का मतदान भी छिटपुट घटनाओं के बीच शांतिपूर्ण संपन्न हो गया. रांची में 61.56, धनबाद में 59.20, जमशेदपुर में 66.79 और गिरिडीह में 66.72 प्रतिशत वोट पड़े. इस तरह 93 प्रत्याशियों की किस्मत ईवीएम में कैद हो गई. अब चार जून को मतगणना होगी. सुबह से ही मतदान केंद्रों में मतदाताओं की भीड़ जुटने लगी थी. युवाओं में विशेष उत्साह था. खासकर पहली बार वोट करने वाले युवा ज्यादा उत्साहित थे. दिनभर कड़ी धूप के बावजूद मतदान केंद्रों पर लंबी लाइन देखी गई. ग्रामीण इलाकों में भी मतदान को लेकर काफी उत्साह था. मतदान केंद्रों के आसपास सुरक्षा के कड़े प्रबंध किए गए थे.

जमशेदपुर

रांची में 61.56, धनबाद में 59.20, जमशेदपुर में 66.79 गिरिडीह में 66.72 प्रतिशत वोट

फस्ट टाइम वोटर

युवा

धनबाद

होसला

गिरिडीह

कली खिल जाती है दिल की तुम्हारे मुस्कुराने से

कविता कलम
डॉ. विनय कुमार पाण्डेय

गर्मी की तपन भी बारिश की बूंदों सी लगने लगे, पतझड़ के मौसम में अगर बहारों सी ठंडक का एहसास हो तो मतलब साफ है कि आपको कुछ हो गया है और जो हो गया, उसे प्यार, इश्क या मोहब्बत के नाम से दुनिया-जहान जानती है. यह इश्क खुदा की इबादत से कम नहीं है.. अगर आप बार-बार किसी खास के ख्यालों में डूब जाते हैं तो मतलब साफ है कि आपको प्यार हो गया है. अगर ऐसा ही अहसास उधर भी है तो समझ लीजिए, दोनों तरफ है आग बराबर लगी हुई. आप कहीं जाते हैं और आपकी नजरें उसे ढूंढने लग जाती है, अगर आपको किसी विशेष साथी या व्यक्ति की बात अच्छी लगती है, अपने दिल की हर बात किसी खास को बताने के लिए मन मचलता है तो समझ लीजिए, आपको प्यार हो गया है. एक जिज्ञासु मित्र ने मुझसे छोटा-सा सवाल किया-आप को कभी प्यार हुआ है या नहीं. मैंने कहा-सवाल के आशय के अनुसार तो मुझे प्यार करने का मौका ही नहीं मिलता. मैं प्यार-मोहब्बत की बात सोचता, उससे पहले ही मेरी शादी हो गयी, लेकिन सच तो यही है कि कोई भी व्यक्ति बिना प्यार मुहब्बत के इस संसार में जिंदा भी नहीं रह सकता. इसलिए जन्म लेने के बाद जिसने भी मुझसे प्यार किया, उससे मुझे प्यार हो गया. माता-पिता, बहन-भाई, पत्नी-बच्चे, पोते-पोतियां अपना गांव, समाज, प्रदेश, राष्ट्र आदि ऐसे लोगों की लंबी सूची है, जिससे मुझे प्यार हो गया है. अगर आपने कभी प्यार को महसूस नहीं किया है तो उसे महसूस करके देखिए. दुनिया में प्यार से बेहतर कोई एहसास नहीं है. ऐसे एहसास की एक झलक हम मशहूर शाइरा **शमां फिरोज** की इस गजल में देख सकते हैं-

हमारा प्यार जिंदा है तुम्हारा साथ पाने से
अलल ऐलान ये कहते हैं हम सारे जमाने से
बनाकर तोड़ डाले हैं तुमने सारे ये रिश्ते
दुबारा बिगड़े रिश्ते फिर नहीं बनते बनाने से
कभी डरते नहीं आशिक वो खुलकर प्यार करते हैं
किया जब प्यार है हमने तो फिर डर क्यों जमाने से
तुम्हारे चेहरे पर मायूसी ये अच्छी लगती नहीं लगती
कली खिल जाती है दिल की तुम्हारे मुस्कराने से
बनाकर ही तसव्वुर में हमेशा डूबे रहते हैं
हमें मिलती बड़ी राहत तुम्हारे पास आने से

पत्नी को परमेश्वर मानो

यदि ईश्वर में विश्वास न हो,
उससे कुछ फल की आस न हो,
तो अरे नास्तिको! घर बैठे,
साकार ब्रह्म को पहचानो!
पत्नी को परमेश्वर मानो!
वे अन्नपूर्णा जग-जननी,
माया हैं, उनको अपनाओ.
वे शिवा, भवानी, चंडी हैं,
तुम भक्ति करो, कुछ भय खाओ.
सीखो पत्नी-पूजन पद्धति,
पत्नी-अर्चन, पत्नीचर्या
पत्नी-व्रत पालन करो और
पत्नीवत् शास्त्र पढ़े जाओ.
अब कृष्णचंद्र के दिन बीते,
राधा के दिन बढ़ती के हैं.
यह सदी इक्कीसवीं है, भाई !
नारी के ग्रह चढ़ती के हैं.
तुम उनका छाता, कोट, बैग,
ले पीछे-पीछे चला करो,
संध्या को उनकी शैय्या पर
नियमित मच्छरदानी तानो!
पत्नी को परमेश्वर मानो.
तुम उनसे पहले उठा करो,
उठते ही चाय तयार करो.
उनके कमरे के कभी अचानक,
खोला नहीं किवाड़ करो.
उनकी पसंद के कार्य करो,
उनकी रुचियों को पहचानो,
तुम उनके प्यारे कुत्ते को,
बस चूमो-चाटो, प्यार करो.
तुम उनको नाविल पढ़ने दो
आओ कुछ घर का काम करो.
वे अगर इधर आ जाएं कहीं ,
तो कहो-प्रिये, आराम करो!
उनकी भौंहें सिगनल समझो,
वे चढ़ीं कहीं तो खैर नहीं,
तुम उन्हें नहीं डिस्टर्ब करो,
ए हटो, बजाने दो प्यानो!

- गोपाल प्रसाद व्यास

प्यार, मोहब्बत या प्रीत को वहीं महसूस कर सकता है, जिसने इसे कर के देख लिया है. इसमें तृप्ति से अधिक महत्व प्यास का होता है और बहुत प्रयास के बाद भी प्यास नहीं बुझ पाता है तो जो कष्ट होता है, उसका अनुमान कोई दिलदार ही कर सकता है. तभी तो श्याम के प्रेम की दीवानी मीरा कहती हैं-जो मैं ऐसा जाणती रे प्रीत किये दुःख होय, नगर ढिंढोरा पीटती रे प्रीत करो मत कोय. प्रीत क्या है, इसे मीरा ने अच्छी तरह महसूस किया था तो की मीरा भी प्रीत को गहराई से समझती हैं. मेरा मतलब है लौह नगरी जमशेदपुर की कवयित्री **सविता सिंह मीरा** ने इसे ऐसा जाना है-

तू प्रीत मीत बन मेरे
हिय में आकर बस जा
एषणा ये मेरी जरा सुन तो सखे
परिरम्भण में तेरे तू मुझे रखे
प्रेम का मृदु संवाद हो जाएगा
आ न हम तुम जरा प्रेम रस ही चखे.
प्रेम घुलता रहा मैं मचलती रही
जैसे मीन नीर में विहंसती रही
जल से हो पृथक वो तड़पने लगी
विलय तुझमें हुआ तुझको जीती रही.
टूट कर मुझको बस आज जीना तुझे
अमिय क्षण में साथी मुझे कुछ ना सूझे
आज जी लेंगे सारे विरह के वो दिन
इस मधुर यामिनी से सूर्य तनिक न जूझे
इतनी एषणा जरा पूर्ण कर तू सखे.

छक कर प्रेम रस का पान करना सखे.

मोहब्बत इसलिए भी जरूरी है कि कोई भी इंसान अकेला नहीं रह सकता. उसे किसी न किसी हमसफर की जरूरत तो होगी ही और उस हमसफर तक पहुंचने में मददगार की भूमिका निभाती है यह इश्क. दिल में मोहब्बत हो तो बिना हमसफर के एक पल भी बिताना मुश्किल हो जाता है. इसी भावना को अभिव्यक्ति दे रही हैं रांची की कवयित्री **रेणु झा रेणुका**. इनकी कविता का शीर्षक है हमसफर.

ओ मेरे हमसफ़र, चलो ना कुछ पल
एकांत में बिताएं, शहर के कोलाहल से दूर,
प्रकृति की गोद में कुछ लम्हें जीकर आएं,
कुछ अपनी कहना, कुछ मेरी सुनना,
गुजरे पलों को जीवंत बनाएं
चलो ना कुछ पल एकांत में बिताएं.
जीवन की आपाधापी में कुछ गिले-शिकवे हैं
उन्हें छोड़ शुकून पाएं.
अटारी से नजारे देखें,
वो बारिश की बूंदें, घटाएं, पंछियों के कलरव,
सभी से मिलकर मस्त हो जाएं, चलो ना कुछ पल एकांत में बिताएं.
कल तक जिए हम उनके लिए, आज खुद से खुद को मिलाएं,
अपने गीत, अपनी ही धुन में गाएं, हम एकांत में भीड़ बढ़ाएं,
चलो ना कुछ दिन एकांत में बिताएं.
अब तो तबियत भी नासाज सी रहती है
तुम्हारी बात से, प्रकृति के साथ से,
इलाज कर आएं, जीवन में खुशनुमा रंग भर आएं,
ओ मेरे हमसफ़र, चलो ना कुछ पल एकांत में बिताएं।।

हमसफर के प्रति लगाव हर हाल में काबिले तारीफ होता है. यह लगाव किसी उम्र का मोहताज नहीं होता और होना भी नहीं चाहिए. झारखंड में जब शायरी की बात होती है तो मशहूर शायर **नसीर अफसर** का नाम अपने आप जुबान पर थिरक उठता है. हमसफर की ऐसी ही चर्चा छिड़ने पर नसीर साहब ने अपने शरीक ए हयात को यह नज्म नज्र कर दी है- ए मिरी जिंदगी.

ऐ मिरी हमसफर, ऐ मिरी ज़िंदगी
सामने आ ज़रा, धड़कनों में समा
जिस्म ओ जां हो मिरी , ऐ मिरी ज़िंदगी
तुम मिरी रूह हो, तुम मिरी जान हो
साज़ ओ आवाज़ हो, ऐ मिरी ज़िंदगी
सुब्ह ए नव की किरण, ऐ मिरी हमनशीं
सुरमयी शाम हो, ऐ मिरी ज़िंदगी
तुम मुझे ओढ़ लो, मैं तुझे ओढ़ लूं
शबनमी रात हो, ऐ मिरी ज़िंदगी.

मोहब्बत के एहसास से भरी शबनमी रात बड़े भाई नसीर साहब के साथ ही दुनिया के तमाम प्रेमियों को मुबारक. चाहे माशूका हो या शरीक ए हयात हमसफर, खुले दिल से मिलना चाहिए. बीच में छल प्रपंच, झूठ आदि को आने नहीं देना चाहिए और झूठों के पहाड़ से सच को छिपाने की कोशिश भी नहीं करनी चाहिए. इस बात को वक्रोक्ति अलंकार में जमशेदपुर के **कवि हरिहर राय** चौहान ने इस प्रकार कहने की कोशिश की है-

सांच , झूठों से छुपाना चाहिए.
आग से पानी बुझाना चाहिए.
जब कोई गंगा उलट बहने लगे,
सागरों को.. थरथराना चाहिए.
जब नदी के तीर भी जलमग्न हों,
ना खुदा को चेत जाना चाहिए.
मौत भी जब हो सनम के वेश में,
आशिकी का गीत गाना चाहिए.
रूठने की अहमियत कायम रहे,
इसलिए उनको मनाना चाहिए.

प्यार-मुहब्बत में रूठना और मनाना तो आम बात है. हमसफर का रूठना तो वही स्वाद देता है जो भोजन में नमक और जब मनाने में सफलता मिल जाये तो वातावरण में मिसरी-सी घुल जाती है. मेरे दिल की तमन्ना है सबके दिल में मोहब्बत जिंदा रहे- इसी दुनिया में जन्नत का एहसास बना रहे. इसी के साथ विदा चाहता हूं. जय हिंद ! जय झारखंड !!

रोजगार और डिलीवरी बॉय

चौराहा
प्रमोद कुमार झा

पिछले दिनों मेरे एक बहुत समृद्ध, विद्वान मित्र से बातचीत हो रही थी. वे एक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय नवरत्न कंपनी के महाप्रबंधक पद से अवकाश प्राप्ति के बाद सुख चैन की ज़िंदगी बिता रहे हैं. बेटा इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने के बाद ऑस्ट्रेलिया में एक बहुराष्ट्रीय कंपनी का उच्चाधिकारी है. मित्र से बातचीत धीरे-धीरे तीखी बहस में बदल चुकी थी . चर्चा शुरू हुई थी शिक्षा और रोजगार को लेकर. मेरे विद्वान मित्र का मंतव्य था कि पिछले कुछ सालों में नए स्टार्ट अप और परिवर्तन से रोजगार के अत्यधिक अवसर बढ़े हैं. उदाहरण के तौर पर उन्होंने डिलीवरी बॉय की नौकरी की चर्चा की. उनका कहना था प्रत्येक शहर में सैकड़ों युवक-युवतियों को रोजगार मिल रहा है और वे लोग प्रसन्न और सुखी हैं. जब मैंने पूछा कि क्या आपने इन डिलीवरी बॉय/गर्ल से कभी बात की और उनकी नौकरी की शर्तें, तनख्वाह, छुट्टी, सुरक्षा के बारे में बात की तो उन्होंने जबाब दिया, उन लोगों से कौन बात करता है? खुश हैं तभी तो काम कर रहे हैं? सामान्यतः ऐसी ही स्थिति हम सबों की है. शायद ही किसी को फुरसत मिली होगी उनसे बात करने की या उनकी वास्तविक स्थिति जानने की. हालांकि यह भी सच है कि हम सबों ने कंपनियों से सीधे सामान मंगवाने के लिये, राशन -पानी, खाना-नाश्ता मंगवाने के लिए इनकी सेवा का लाभ उठाया है. मेरे मित्र तो मुझसे खासे नाराज हो गए कि शेयर मार्केट के उतार चढ़ाव, सोने के बढ़ते घटते दाम, हमास -इस्राइल युद्ध की चर्चा, विमर्श छोड़कर मैं डिलीवरी बॉय जैसी 'मामूली' सी चीज पर अपना समय अपव्यय कर रहा हूं. फिर मैंने बारी बारी से मेरे पास सामान लाने वाले डिलीवरी बॉय/गर्ल से उनके बारे में ,व्यवसाय के बारे में, तनख्वाह के बारे में, उनकी शिक्षा, सुरक्षा और पारिवारिक परिस्थिति के बारे में धीरे-धीरे जानना शुरू किया. सभी डिलीवरी बॉय/गर्ल कम से कम मैट्रिक पास होते हैं. कुछेक ग्रेजुएट और पोस्ट ग्रेजुएट भी मिले. उनके पास अपना दुपहिया वाहन और एंड्राइड फ़ोन होना आवश्यक होता है. राष्ट्रीय/ बहुराष्ट्रीय कंपनी के डिलीवरी बॉय को औसतन चौदह-पंद्रह हजार रुपये प्रति माह मिलता है, साप्ताहिक छुट्टी मिलती है, कम से कम आठ घंटे काम करना होता है. फिर भी एक प्रशिक्षित मज़दूर से भी कम है वेतन! रोजगार की कोई गारंटी नहीं, कोई बीमा नहीं, कोई स्वास्थ्य समस्या होने पर कोई अलग छुट्टी नहीं! जो सामान्य नाश्ता- खाना पहुंचाने वालों को सवारी, मोबाइल तो चाहिए ही, पहुंचाने में विलंब होने पर जुर्माना भी भरना पड़ता है! कोई साप्ताहिक अवकाश, बीमा, स्वास्थ्य सुविधा, छुट्टियां कुछ भी नहीं .और तनख्वाह महीने में आठ से दस हज़ार के बीच! किसी दैनिक मज़दूर से भी प्रायः कम! तो अगली बार जब कोई डिलीवरी बॉय/गर्ल सामान लेकर आये तो उससे कुछ और नहीं तो सहानुभूति पूर्वक बात कीजिये. एक ग्लास पानी के लिए तो पूछ ही सकते हैं हालांकि उन्हें रुकने की फुरसत ही नहीं होती!

गौतम बुद्ध की उपदेश भूमि वैशाली

यायावर
डॉ. जंगबहादुर पाण्डेय

वैशाली गौतमबुद्ध की अधिकारिणी कृपा भूमि रही है. यों तो गौतमबुद्ध का जन्म कपिल वस्तु के लुम्बिनी जनपद में 463 ई पू हुआ था, ज्ञान की प्राप्ति बोधगया में हुई थी, लेकिन उनकी उपदेश भूमि का गौरव वैशाली को प्राप्त है.इनके पिता शुद्धोधन शाक्यों के प्रमुख थे और इनकी माता का नाम माया देवी था. इनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था. बचपन से ही ये वैरागी प्रवृत्ति के थे. संसार के प्रति इनकी उदासीनता को देखकर इनके पिता चिंतित हुए और परम सुंदरी यशोधरा से इनका विवाह कर दिया, यशोधरा से इन्हें राहुल जैसे लाल की प्राप्ति हुई.एक दिन एक वृद्ध को,दूसरे दिन एक रोगी को और तीसरे दिन एक मृतक को देखकर संसार की क्षण-भंगुरता पर इन्हें घोर चिंता हुई और सोई हुई यशोधरा और सोये हुए राहुल को छोड़ कर इन्होंने संसार के कल्याणार्थ कपिल वस्तु का त्याग कर दिया. ज्ञान प्राप्ति के लिए अनेक जगह भटके, लेकिन बिहार प्रांत के गया जनपद से लगभग 15 किलोमीटर दूर निरंजना नदी के तट पर समाधि लगायी और बुद्धत्व (बोध यानि ज्ञान)की प्राप्ति हुई, इसीलिए यह स्थान भूगोल में बोधगया के नाम से विश्व पटल पर समादृत हुआ.

भगवान बुद्ध के साथ वैशाली का बड़ा घनिष्ठ संबंध रहा है.वे यहां कई बार यहां आए थे,यहां उपदेश दिए थे और उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं यहां घटी थीं. बौद्ध साहित्य में वैशाली का बड़ा ऊंचा स्थान है. कपिलवस्तु से यहां आकर उन्होंने साधना की थी.एक संस्कृत बौद्ध ग्रंथ 'ललित विस्तर' में इसका उल्लेख मिलता है कि कपिल वस्तु से पहले भगवान वैशाली आ गये थे, जहां उनकी आलार-कालाम से भेंट हुई थी और उनके आश्रम में उन्होंने योगाभ्यास किया था. इस कठोर साधना में उनका शरीर अस्थि पंजर मात्र रह गया था.

भगवान बुद्ध के समय की वैशाली आज की वैशाली की तरह जर्जर, विपन्न और उजाड़ नहीं थी, बल्कि धन धान्य से परिपूर्ण समृद्धशाली नगरी थी. स्वयं गौतमबुद्ध ने यहां के रमणीय स्थलों का वर्णन अत्यंत मार्मिक शब्दों में अपने प्रिय शिष्य आनंद को संबोधित करते हुए किया था-₹ आनंद रमणीय है वैशाली. रमणीय है उसका उदयन चैत्य. रमणीय है उसका सप्तामनक चैत्य. रमणीय है उसका बहुपुत्रक चैत्य. रमणीय है उसका सारदंद चैत्य.₹ ये सभी चैत्य वैशाली के देव स्थान थे, जहां भगवान गौतमबुद्ध बिहार करने जाया करते थे. एक बार भगवान बुद्ध योंहि आम्रवन में टहल रहे थे, तो लिच्छवियों को स्वयं से मिलने आते देख कर शिष्यों से कहा -अवलोकन करो ! लिच्छवी परिषद् को भिक्षुओं! लिच्छवी परिषद् को देव परिषद् समझो. इन वाक्यों से स्पष्ट है कि यहां के निवासियों के प्रति उनके मन में कितनी श्रद्धा थी.

भगवान बुद्ध को वैशाली से बहुत लगाव था.वे कई बार वैशाली आये थे. ज्ञान प्राप्ति के पांचवें वर्ष वे वैशाली आए थे तो वर्षावास यहीं किया था. अनुमान है कि बुद्ध की इस यात्रा के समय ही वैशाली बौद्ध धर्म के प्रभाव में आयी थी. एक बार वैशाली जनपद भयंकर अकाल की चपेट में पड़ गया था. असंख्य लोगों की मृत्यु हो गई थी तो लिच्छवियों के निमंत्रण पर भगवान बुद्ध 500 बौद्ध भिक्षुओं के साथ वैशाली आए थे. आनंद को रत्न सुत्त का उपदेश देकर नगर के भीतर इसका पाठ करने को कहा था, जिसके प्रभाव से सभी नगर वासी भय रोग मुक्त हो गये थे. कहा जाता है कि यहीं से वे अपने पिता से मिलने कपिल वस्तु गये थे. कपिल वस्तु में महाप्रजापति गौतमी ने बुद्ध से भिक्षुणी बनने की इच्छा प्रकट की थी. बुद्ध को न सहमत होते देख गौतमी ने 500 शाक्य महिलाओं के साथ गौतमबुद्ध का पीछा करती हुई कपिलवस्तु आयी थी. यहां आनंद के आग्रह पर भगवान बुद्ध ने शाक्य महिलाओं के साथ महाप्रजापति गौतमी को आठ गुरु धर्मों के साथ बौद्ध संघ में प्रवेश दिलाया और महिला भिक्षुणी संघ का निर्माण किया.

इसके अतिरिक्त बुद्ध कई बार वैशाली आए. वैशाली में वे प्रायः महावन के कूटागार में ठहरा करते थे. बुद्धत्व प्राप्ति के तीसरे वर्ष बुद्ध कपिलवस्तु गये और वहां उन्होने राहुल को दीक्षा दी और वहां से चलकर वैशाली आए और उसी कुटागार में ठहरे. बुद्ध ने वैशाली की अंतिम यात्रा कुशीनगर जाने के क्रम में की थी. अम्बपाली वैशाली की नगर बधू थी, जो सुंदरता में अनुपम और अद्वितीय थी. अम्बपाली ने बुद्ध की अंतिम वैशाली यात्रा के क्रम में अपने घर पर भोजन कराया था और उनसे बुद्ध धर्म की दीक्षा ली थी और भोजनोपरान्त अपना आम्रवन दान कर भिक्षुणी बन गई थी. इसमें कतई संदेह नहीं कि लिच्छिवियों के हृदय में भगवान बुद्ध के प्रति अपार स्नेह और श्रृद्धा थी. धनुष-वाण लेकर महावन में घूमने वाले लापरवाह लिच्छवी बुद्ध को देखते ही अपना धनुष- बाण छोड़ देते थे और बुद्ध का उपदेश सुनने लगते थे. जिस प्रकार सारनाथ मृगदाय को भिक्षु संघ का उद्भव होने का यश प्राप्त है , उसी प्रकार बौद्ध भिक्षुणी संघ की कर्म स्थली होने का गौरव वैशाली को प्राप्त है. भगवान बुद्ध जीव दया और सहृदय करुणा की सजीव मूर्ति थी.दीर्घ तपस्वी महावीर की जन्मभूमि और तथागत गौतमबुद्ध की उपदेश भूमि होने के कारण वैशाली विदेह का प्रधान नगर रहा है. बौद्ध ग्रंथ ललित विस्तर में लिखा है कि गौतमबुद्ध के समय की वैशाली भारतवर्ष की तत्कालीन महानगरियों में अनुपम और अद्वितीय थी, उनकी उपदेश भूमि धन्य थी.

हार के आगे प्यार है...

नश्तर
सुधीर राघव

बीवी को प्यार से डर लगता है, झगड़े से नहीं! अगर आप चाहते हैं कि आपकी बीवी आपसे डरे तो ताबड़तोड़ प्यार करते रहो! गलती से भी झगड़े का ट्रेक पकड़ा तो आपका बैंड बजना तय है. वह पृथ्वीराज नहीं है कि इक्कीस बार जीतने के बाद बाइसवीं बार हार जाए. बाइसवीं बार भी वही जीतेगी. तब आपको याद आएगा कि पत्नी का एक नाम गोरी भी है.

इतिहासकारों में इस पर मतभेद हो सकते हैं कि पृथ्वीराज ने मोहम्मद गौरी को कितनी बार हराया, क्योंकि हम्मीर महाकाव्य बताता है सात बार; पृथ्वीराज प्रबंध आठ बार; पृथ्वीराज रासो इक्कीस बार और प्रबंध चिंतामणि तेईस बार पृथ्वीराज का गौरी के हाथों हारना बताता है... मगर यह तय मान लो कि पत्नी से झगड़ोगे तो हर बार हार तुम्हारी होगी.

हो सकता है बीवी हरदम झगड़े के मूड में दिखे. मगर आपको जाल में नहीं फंसना है. आपको धैर्य से तीखे शब्दों को बिना ढाल के सीने पर लेना है. बिल्कुल वैसे जैसे भीष्म ने अर्जुन के प्रहारों से अपने लिए बाणशैय्या बना ली. आपको चुपचाप पत्नी के शब्दों को शैय्या बना लेना है. यह संसार की सबसे उत्तम कला है. शब्द शैय्या पर लेटकर आपको भी हर बार भीष्म अनुभूति होगी. किंतु धैर्यवान पुरुष ही इस उच्चता तक पहुंच पाते हैं, जबकि कुछ धैर्यहीन पत्नी को छोड़कर भाग जाते हैं और प्रायः नीचता को प्राप्त होते हैं.

कुछ ऐसे विरले उदाहरण भी हैं, जिन्होंने खुद पत्नी से मुक्त होकर पूरे संसार को मुक्ति दिलाने की ठानी और परम उच्चता को प्राप्त हुए. यह और बात है कि सारा संसार कभी मोह माया से मुक्त नहीं हो सका.. मगर पत्नी से मुक्त होने वालों का आत्मविश्वास इतना अवश्य बढ़ जाता है कि वे बहुतों को यकीन दिला देते हैं कि अगर पत्नी मुक्त हुआ जा सकता है तो संसार से मुक्ति भी संभव है. मुक्ति का मार्ग सब चाहते हैं. सबको मुक्त होना है. कोई फंसना नहीं चाहता. मगर यह पूरी सृष्टि तो फंसे हुए लोग ही चला रहे हैं. अगर ग्रह और सूर्य एक दूसरे के गुरूत्वाकर्षण में न फंसे होते तो क्या यह संसार होता? अगर कर्ता पुरुष को आसक्ति न होती तो क्या संसार की रचना होती. अगर ईव से आदमी ने झगड़ा कर लिया होता और वह फल न खाया होता तो क्या आज धरती पर इतनी रौनक होती. अतः मुक्ति नहीं आकर्षण ही रचेता का ध्येय है. शायद इसीलिए ईश्वर ने पत्नी को झगड़ालु बनाया है. इस झगड़े में जीत के लिए लड़ना अहंकार है... क्योंकि हार के आगे प्यार है. प्यार से ही संसार है.

यादगार क्षणों को अपने कैनवास पर उकेरते हैं अक्षय

कला-संवाद
मनोज कुमार कपरदार

कला मानस के उल्लास और विषाद की अनायास होने वाली सहज अभिव्यक्ति है, हालांकि व्यक्तिगत विचारों में यह एक गम्भीर विषय है, जो व्यक्ति की अन्तर्निहित अभिव्यक्तियों से जुड़ा है. पूर्ण निष्ठा, ईमानदारी एवं लगन से किए हुए सृजन में स्वतः ही भाव प्रस्फुटित होता है. दर्शक इन्हीं भावों को अपने अन्दर के भावों से जोड़ता है और आनंदित होता है और उससे सौन्दर्य का अहसास होता है. हालांकि कला समय के अनुकूल समाज के बीच अलग-अलग रूपों में व्यक्त होती रही है और यह स्वाभाविक है कि यह अपने समय के विषयों को कला के रूप में प्रस्तुत करती रही है और रचनाकार इस अभिव्यक्ति का जन्मदाता होने का सौभाग्य प्राप्त करता है. कलाकार समाज से ही प्रेरित होकर विभिन्न माध्यमों से अपनी कल्पना से कैनवास पर सशक्त रूप प्रदान करता है और वे सजीव लगते हैं, क्योंकि उनमें लोक की वह आत्मा विराजती है, जिसे कलाकार अपने आपमें आत्मसात कर लेता है.

प्रत्येक कला का प्रेरणा स्रोत भी हमारे सामाजिक परिवेश से ही जुड़ा होता है, तभी तो अक्षय कुमार जैसे कलाकार अपनी कृतियों को रचने के लिए अपने जन्म स्थान से जुड़ी जन समूह के विषय परिवेश के अनछुए पहलुओं को उठाते हुए अपने माध्यम से आकार देने की कोशिश की है. हमारे दिनचर्या के कार्य कलापों में ऐसी अनेक विषय वस्तु हैं, जो अक्षय कुमार जैसे संवेदनशील कलाकार को सदैव बेचैन करती रही है. ये ऐसे क्षण होते हैं, जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता है. ऐसे ही अविस्मरणीय क्षणों को अपने कैनवास में उकेरते हैं अक्षय कुमार. झारखंड के लोगों ने यहां की संस्कृति और परंपरा को शुरू से ही महत्त्व दिया है और आज भी हमें अपनी प्राचीन संस्कृति से गहरा लगाव है, हम इसे खोना नहीं चाहते. किन्तु यह भी एक चिंतन का विषय है कि मानव परिवर्तन को जल्दी स्वीकार नहीं करता है. अक्षय कुमार की कलाकृतियों में आज भी जंगल में विचरण करते हुए जीव जंतु दिखते हैं तो नृत्य करती हुई झारखंडी संस्कृति भी. इनकी कलाकृतियों में झारखंड के वीर सपूतों की संघर्ष गाथा भी कला प्रेमियों को देशभक्ति के लिए प्रेरित करती है. ये कलाकृतियों के माध्यम से आने वाली पीढ़ियों के लिए झारखंड के वीर सपूतों की संघर्ष गाथा को अपने कैनवास में खूबसूरती से संरक्षित भी कर रहे हैं. ये अपनी कलाकृतियों को एक्रेलिक एवं जल रंग से आकार देते हैं.

अपनी कला शैलियों के बारे में अक्षय कुमार का कहना है कि किसी भी कलाकार के लिए चाहे वह किसी भी माध्यम से जुड़ा हो, अपनी संस्कृति और परंपरा से जुड़ा रहना जरूरी है. अपनी संस्कृति और प्रकृति से जुड़ाव और निरंतर अपने आपको बदलने की ताकत इन्हें जिन्दगी से मिली है. साहेबगंज के

अक्षय कुमार ने कला एवं शिल्प महाविद्यालय से कला की शिक्षा ग्रहण की. कई कला प्रदर्शनियों में इनकी कलाकृतियां शामिल हुईं और कला प्रेमियों ने इसकी सराहना की. कला प्रेमी इनकी कलाकृतियों को देखकर आत्मिक आनंद प्राप्त करते हैं. इनकी कलाकृतियां उन्हें अपने अंदर खींच कर उसकी गहराइयों में झांकने के लिए प्रवृत करते हैं.

आखर

नागरी की वर्तनी में यह घुसपैठ रोकिए

डॉ बुद्धिनाथ मिश्र

दुसे देवनागरी लिपि की ताकत ही कहिए कि जिन नामी-गरामी शायरों की उर्दू में छपी किताबें कुछ सौ भी नहीं बिक पाती थीं, उनका लिप्यंतरण कर हिन्दी में उतार देने से हजारों प्रतियां हाथोंहाथ बिक जाने लगीं. यहां तक कि वे शायर हिन्दी के बेस्टसेलर माने जाने लगे. हिन्दी के कवि मुंह ताकते रह गए. उसका बड़ा कारण यह है कि हिन्दी के रसूखदार वामपंथी प्रोफेसरो ने समकालीन हिंदी कविता का सर तन से जुदा कर इस लायक भी नहीं रखा कि उसको कोई खरीदकर पढ़े. हिंदी कविता की मुख्यधारा वहीं रुकी पड़ी है, जहां दिनकर की पीढ़ी ने छोड़ी थी. नवगीतकारों ने एक नहर बनाने का प्रयास अवश्य किया, लेकिन उसे इकोसिस्टम का पूरा सहयोग नहीं मिल सका. इसकी तुलना में उर्दूदां काव्य प्रेमियों ने अपनी परंपरागत काव्य-विधा का योजनाबद्ध प्रचार कर उसे हिन्दी के गांव-घर तक पहुंचा दिया. राजभाषा के झंडाबरदार छंद-मुक्त कविता की झरबेरी फेंककर गजल के रसीले खजूर खाने लगे. यहां तक तो ठीक था, लेकिन लिप्यंतरण की बाढ़ में बहुत से खर-पतवार भी आ गए, जिससे नागरी लिपि प्रदूषित होने लगी, जो हमारी चिंता बढ़ा रही है. उदाहरण के लिए केवल शेर यथावत प्रस्तुत है-

तुझसे मिलते ही वो कुछ
बेबाक हो जाना मिरा
औ' तिरा दांतों में वो
उंगली दबाना याद है.

> हिंदी कविता की मुख्यधारा वहीं रुकी पड़ी है, जहां दिनकर की पीढ़ी ने छोड़ी थी. नवगीतकारों ने एक नहर बनाने का प्रयास अवश्य किया, लेकिन उसे इकोसिस्टम का पूरा सहयोग नहीं मिल सका.

इसमें यह मिरा और तिरा क्या है? इन्हें क्रमशः मेरा और तेरा आसानी से लिखा जा सकता था. 'ए' को एक मात्रात्मक मानने का गुर हमें गोस्वामी तुलसीदास जी बहुत पहले सिखा गये हैं- 'एहि सन हठ करि हौं पहिचानी' में भी तो ए लघु-मात्रिक ही है. कहां किसी को परेशानी हुई? फिर अचानक यह मिरा-तिरा क्यों होने लगा? इसके पीछे भी कोई सुनियोजित साजिश तो नहीं!

कहावत है कि बुढ़िया के मरने से उतना डर नहीं, जितना यम के परचने का डर है. वह हो भी रहा है. हिंदी के सैकड़ो जांबाज नवयुवक जिस तरह गजल लिखने और उसमें मिरा -तिरा करने लगे हैं, उसे देखकर आशंका होना स्वाभाविक है. यह देव मंदिरों में साईं बाबा की मूर्ति की प्रतिष्ठा की भांति अनर्गल और अनर्थकारी है. पहले हिन्दी के प्रकाशक पांडुलिपियों को तराशने के लिए सुयोग्य संपादक रखते थे. आज उनका अदर्शनं लोपः हो गया है. ऐसे में बाढ़ के साथ आयी खर-पतवारों से भाषा की सुरसरि को कैसे बचाया जाए, यह विचारणीय है. सुतरां, देवनागरी की वर्तनी में यह घुसपैठ हर हाल में रोकिए.

हर मौसम बहता रहे साहित्य सलिल का सोता

मई का महीना चुनाव की सरगर्मी के बीच बीता, इसलिए शायद इस महीने साहित्यिक गतिविधियां कम रही. लेकिन साहित्य एक ऐसा सोता है, जो कभी सूखता नहीं और कभी यहां तो कभी वहां, कभी छोटा तो कभी बड़ा कोई न कोई सोता फूटता ही रहता है. साहित्य की गंगा इस तरह सतत प्रवाहित ही रहती है.

रहीम का एक दोहा है: रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून. पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुष, चून. वास्तव में जल के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है. इसीलिए संसार की सभी सभ्यताओं का विकास जल के अजस्र स्रोतों के आस पास ही हुआ. वैसे तो जल की आवश्यकता जीवन के लिए वर्षभर रहती है, लेकिन गरमी के मौसम में इसका एहसास अधिक तीव्रता से महसूस होने लगता है. इस महीने गर्मी अपने प्रचंड रूप में रही. गरमी के प्रकोप से मनुष्यों के साथ जीव-जन्तु भी त्राहिमाम कर उठे. सनातन धर्म में प्यासे को जल पिलाना बड़े पुण्य का काम माना गया है. यह देखना अच्छा लगता है कि कई संस्थाएं और कई जगह निजी स्तर पर भी पीने के लिए जल की व्यवस्था की जाती है. यह देखना भी अच्छा लगता है कि कुछ संवेदनशील लोग जानवरों और पंछियों के लिए पानी की व्यवस्था करते हैं. मई का महीना चुनाव की सरगर्मी के बीच बीता, इसलिए शायद इस महीने साहित्यिक गतिविधियां कम रही. लेकिन साहित्य एक ऐसा सोता है, जो कभी सूखता नहीं और कभी यहां तो कभी वहां, कभी छोटा तो कभी बड़ा कोई न कोई सोता फूटता ही रहता है और साहित्य की गंगा इस तरह सतत प्रवाहित ही रहती है.

नीरज नीर

यहां रांची के जुटे साहित्यकार

कला एवं साहित्य की अखिल भारतीय संस्था संस्कार भारती की रांची महानगर इकाई की साधारण सभा की बैठक लाइन टैंक रोड स्थित वाटिका होम्स के सभागार में सम्पन्न हुई जिसमें वर्ष 2024---2027 के लिए रामानुज पाठक अध्यक्ष, शशिकला पौराणिक मंत्री एवं अनूप कुमार मजूमदार कोषाध्यक्ष बनाये गए. इनके अलावा 11 सदस्यों की प्रबंध कारिणी का भी गठन किया गया.

जमशेदपुर में आज कवि सम्मेलन

जमशेदपुर में भोजपुरी साहित्य परिषद् के तत्वाधान में दिनांक -21.5.2024, को तुलसी भवन में डॉ रसिक बिहारी ओझा 'निर्भीक' जयंती समारोह आयोजित किया गया. इस समारोह में दिल्ली की नाट्य संस्था रंगश्री के निदेशक महेंद्र प्रसाद को डॉ रसिक बिहारी ओझा निर्भीक सम्मान से सम्मानित किया गया, उन्हें सम्मान स्वरुप शॉल, श्रीफल, स्मृति चिन्ह और नगद राशि दी गई. कार्यक्रम का संचालन परिषद् के के सचिव श्री दिव्येन्दु त्रिपाठी ने किया, माधवी उपाध्याय के सरस्वती वंदना से कार्यक्रम का आरंभ हुआ. अतिथियों द्वारा परिषद् के मुख्य पत्र लुकार के 44वें अंक का लोकार्पण किया गया. इस दौरान डॉ रसिक बिहारी ओझा निर्भीक रचित भोजपुरी नाटक–लांस नायक खूब सिंह का मंचन हुआ, जिसका निर्देशन अनुज प्रसाद श्रीवास्तव ने किया.

जमशेदपुर में 26 मई रविवार को ही श्दिव्य ग्रंथ अध्ययन केंद्रश् के बैनर तले एक विराट कार्यक्रम प्रस्तावित है. यह कार्यक्रम तुलसी भवन में प्रातः 11 बजे से अपराह्न 3 बजे तक होगा. इस कार्यक्रम में कवि सम्मलेन के अलावा 25 साहित्यकारों को अंगवस्त्र और स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित भी किया जाएगा.

हजारीबाग में साहित्य का "परिवेश"

साहित्य के उन्नयन एवं संवर्द्धन में में गोष्ठियों का बड़ा अहम योगदान होता है. गोष्ठियों में न केवल एक दूसरे को जानने समझने का अवसर मिलता है, बल्कि वर्तमान में क्या लिखा पढ़ा जा रहा है, यह भी जानने का अवसर मिलता है. कभी कभी गोष्ठियों में रचनात्मक सकारात्मक सार्थक चर्चा भी देखने को मिलती है. इसी कड़ी में हजारीबाग में साहित्यिक संस्था 'परिवेश' के तत्वाधान में स्थानीय रामनगर रोड स्थित 'केसरी भवन' में कथाकार सह रंगकर्मी मनोज सिन्हा की चर्चित कहानी 'मौत की छलांग' पर एक गोष्ठी का आयोजन संपन्न हुआ. आयोजित गोष्ठी में मुख्य अतिथि के रूप में प्रख्यात कथाकार रतन वर्मा एवं विशिष्ट अतिथि के तौर पर सहदेव प्रसाद लोहानी सम्मिलित हुए. गोष्ठी की अध्यक्षता कवयित्री मोना बग्गा ने की. गोष्ठी का संचालन एवं विषय प्रवेश 'परिवेश' के संयोजक विषय केसरी ने किया. कथाकार मनोज सिन्हा की यह कहानी मौत की छलांग जैसे खतरनाक करतब दिखाने वाले एक गरीब परिवार की तीन पीढ़ियों के संघर्ष से जुड़ी हुई है.

व्यंग्य >> बर्बरीक

लोकतंत्र का टाइम आएगा

चौंक गए न आप? लोकतंत्र के झकझोर उत्सव के बीच यह कौन सा विवादी स्वर लग गया. दरअसल राजनीति शास्त्र की सैद्धांतिक बातों ने दिमाग खराब कर दिया था. जनता अपने प्रतिनिधि चुनती है फिर प्रतिनिधि मिलकर नेता चुनते हैं जो प्रधान बनता है. आप भी तो यही तरीका जानते होंगे लोकतंत्र के बारे में. यह तो नहीं मालूम होगा न कि पहले से ही एक रेडीमेड नेता पेंट पॉलिश करके बिठा रखा है- फलाने के नाम पर वोट दीजिए, चिलाने को प्रधान बनाने के लिए वोट दीजिए. तो फिर सीधे सीधे वोट करवाओ, इतना घुमाकर नाक पकड़ने की जरूरत क्या है. एकदम शाहरुख़ खान वाली फीलिंग आ रही है- किसी चीज को शिद्दत से चाहो तो सारी कायनात उसे मिलाने में लग जाती है. है कि नहीं? चुनाव आयोग, ईडी, मीडिया सब मतलब पूरी कायनात जुट गई है महामानव को प्रधानी की

> इतिहास गवाह है कि जिस किसी को ऐसा इल्हाम हुआ उसे मुंह की खानी पड़ी. आपातकाल के वक्त भी एकबार ऐसा यकीन हुआ था मगर लोकतंत्र की सुई ने घमंड का गुब्बारा फुस्स कर डाला.

कुर्सी से मिलाने में. जब ऐसी खातिरदारी में सब लगे हों तो किसी को भी अपने खुदा होने का यकीन हो ही जाएगा. इसलिए तो शायर ने कह दिया था- कल तक जो शख्स यहां तख्तनशी था/उसको भी अपने खुदा होने का इतना ही यकीं था. खुदा होने का यकीं बड़ी मुश्किल से जाता है. ज़िंदा जावेद लोकतंत्र की यही खासियत होती है कि वह इंसान के खुदा होने के यकीन को जोड़ता रहता है. इतिहास गवाह है कि जिस किसी को ऐसा इल्हाम हुआ उसे मुंह की खानी पड़ी. आपातकाल के वक्त भी एकबार ऐसा यकीन हुआ था मगर लोकतंत्र की सुई ने घमंड का गुब्बारा फुस्स कर डाला. यह बात और है कि हम बतौर क़ौम बहुत टुच्ची बातों पर गौर फरमाते हैं और उसी को लोकतंत्र समझते हैं, मसलन जाति, धर्म, जनता को दी जाने वाली रिश्वत और बड़ी चीजों को बेकार समझते हैं मसलन वोट की पवित्रता, रोजगार का सवाल, शिक्षा स्वास्थ्य के प्रश्न,संविधान की वकत आदि. वैसे तो दलों के घोषणापत्र भी जारी होते हैं और वादे दावे भी किए जाते हैं लेकिन उन्हें न तो पढ़ने समझने की जरूरत समझी जाती है न गंभीरता से लेने की. घर के बुजुर्गों की हिदायत की तरह उन्हें दरकिनार कर दिया जाता है. हर चुनाव शुरू तो होता है बड़े मुद्दों के साथ लेकिन धीरे धीरे हमारे रहनुमाओं की तरह ही निचले स्तर पर उतर जाता है - हिन्दू मुसलमान, मंगलसूत्र, संपत्ति छीनझपट, लूट खसोट तक. मुश्किल है कि जम्हूरियत में बंदों को सिर्फ गिनते है तौलते नहीं हैं. जब तौलना शुरू कर देंगे और टुच्ची चीजों की जगह बड़े सवालों के बारे में सोचेंगे तभी लोकतंत्र गाएगा - अपना टाइम आएगा, अपना टाइम आएगा...

कविता/गज़ल

अशोक प्रियदर्शी

चिड़िया की बात

जब हम चिड़िया की बात करते हैं
तो हौसले की बात करते हैं
क्योंकि परवाज डैनों से नहीं
हौसले से भरी जाती है.
जब हम चिड़िया की बात करते हैं
किसी रजिया, किसी राधा की बात नहीं करते
क्यों कि चिड़िया, बस चिड़िया होती है
रजिया या राधा नहीं.

जब हम चिड़िया की बात करते हैं
अपरिग्रह की बात करते हैं
क्योंकि चिड़िया कोठियां नहीं भरती
उसे अपनी भूख मिटाने को चार दाने चाहिए
और उन चार शावकों को चुग्गा देने के लिए
जो अभी घोंसलों में पड़े
अपने डैने खुलने के इंतज़ार में हैं.

जब हम चिड़िया की बात करते हैं
सिर्फ निसर्ग में फैली हरीतिमा की बात करते हैं
गैरिक, लाल या हरे रंग की बात नहीं करते.
चिड़ियों में राजनीति नहीं होती
निश्चल सरलता होती है.

जब हम चिड़िया की बात करते हैं
तब हम सिर्फ श्रम को सलाम करते हैं
क्योंकि चिड़िया परिश्रम से अपना नीड़ बनाती है
दूर-दूर जाकर तिनकों का इंतजाम करती हैं
कार्य और सिर्फ कार्य करती हैं.

जब हम चिड़िया की बात करते हैं
तो अहिंसा की बात करते हैं
चिड़िया बंदूक नहीं उठाती
बारुद नहीं बिछाती
संभावित खतरे को भांप
फुर्र से उड़ जाती है
विवाद से दूर
अपने जानते, खतरों से परे.

गोया जब हम चिड़िया की बात करते हैं
किसी बुद्ध, किसी महावीर
किसी गांधी, किसी परमहंस की बात करते हैं
ये बातें जो हमें याद रहनी चाहिए, शायद
जब हम चिड़िया की बात करते हैं...

मुक्ति शाहदेव

खो गई पोथी प्रेम की

धूल सी है जम गई
हर रिश्ते पर क्यों भला
संवाद सारे खो गए
शोर कैसा अजनबीपन का
ठहरा है वर्षों से जैसे
एक जगह पानी बहुत
काई सीलन और गंध भरा.

ढाई आखर प्रेम वाली
पोथी कैसे खो गई,
सूख गए हैं सोते जब से
नदी ठिठकी उदास खड़ी
आओ हम तुम मिलजुल करके
रचें नई कुछ प्रेम पाती
गढ़ें नए आयाम कुछ ऐसे
बहे सरिता कलकल करती
आज सूरज डूबने से पहले.

संयोजन : चेतना झा, डिजाइनिंग - खुशबू कुमारी

गहरे प्यार में नफरत ने क्यों ली जगह? अलगाव तक पहुंची दोनों की कलह

नताशा से तलाक हुआ, तो कंगाल हो जाएंगे हार्दिक पांड्या!

एजेंसी। मुंबई

टीम इंडिया के स्टार क्रिकेटर हार्दिक पांड्या आईपीएल 2024 में कुछ खास नहीं कर सके. उनकी टीम मुंबई इंडियंस बुरी तरह पिट गई. अब पांड्या निजी जिंदगी को लेकर भी परेशान चल रहे हैं. रिपोर्ट्स की मानें तो वे वाइफ नताशा स्टेनकोविक से तलाक लेने वाले हैं. इतना ही नहीं पांड्या को प्रॉपर्टी का 70 प्रतिशत हिस्सा भी देना होगा.

हालांकि इसको लेकर किसी भी तरह की आधिकारिक जानकारी सामने नहीं आई है. अब सवाल यह उठता है कि अगर पांड्या और नताशा का तलाक हो रहा है तो इसकी वजह क्या है. पांड्या और नताशा सोशल मीडिया पर काफी एक्टिव रहते हैं. लेकिन वे दोनों ही सोशल मीडिया पर फरवरी के बाद साथ नहीं दिखे हैं. इन दोनों की आखिरी तस्वीर 14 फरवरी की है, जो कि साथ की है. हालांकि इसके बाद एक कार्यक्रम में दोनों जरूर साथ दिखे थे. पांड्या आईपीएल 2024 के दौरान बुरी तरह ट्रोल हुए थे. वे मुंबई इंडियंस की कप्तानी को लेकर आलोचना का शिकार हुए और अब निजी जिंदगी की वजह से परेशान होंगे.

पांड्या-नताशा के बीच कलह का कारण

पांड्या और नताशा के बीच दूरी क्यों बढ़ी, इसकी पुख्ता जानकारी तो नहीं है. लेकिन यह जरूर है कि दोनों के बीच मतभेद हो चुका है. मीडिया रिपोर्ट्स की मानें तो पांड्या और नताशा की पहली मुलाकात मुंबई में एक पार्टी के दौरान हुई थी. यहां दोनों दोस्त बन गए. इसके बाद काफी वक्त साथ बिताया. पांड्या ने 2020 में नताशा से शादी कर ली. इसके बाद दोनों काफी अच्छी जिंदगी जी रहे थे. लेकिन फिर मतभेद की वजह से दोनों अलग होने की कगार पहुंच गए. हालांकि वे दोनों तलाक लेंगे या नहीं, इसको लेकर किसी भी तरह की आधिकारिक बयान सामने नहीं आया है.

प्रोफेशनल लाइफ में भी बुरे दौर से गुजर रहे पांड्या

पांड्या की प्रोफेशनल लाइफ भी ठीक नहीं चल रही हैं. वे आईपीएल के पिछले सीजन में गुजरात टाइटंस का हिस्सा थे. लेकिन इसके बाद उन्हें मुंबई इंडियंस ने ट्रेड कर लिया. पांड्या को मुंबई में आते ही कप्तानी मिल गई. उनके आने से रोहित शर्मा को नुकसान हुआ. रोहित को कप्तानी से हटा दिया गया. यह बात फैंस को भी पसंद नहीं आई. इस वजह से पांड्या मैच के दौरान काफी ट्रोल हुए. वहीं सोशल मीडिया पर भी दर्शकों ने आड़े हाथों लिया.

तो क्या बात तलाक तक पहुंची

कहावत है कि बिना के आग के कहीं धुआं नहीं उठता है... हार्दिक पंड्या और उनकी सर्बियाई पत्नी नताशा स्टेनकोविच के रिश्ते में सब कुछ ठीक नहीं चल रहा है, ऐसी अफवाहें हैं. सोशल मीडिया पर चर्चा है कि दोनों अलग हो सकते हैं. कुछ बातों ने इन अफवाहों को हवा दी है. पहली बात तो यह कि नताशा ने अपने इंस्टाग्राम बायो से पांड्या सरनेम को हटा दिया. दूसरी बात यह कि नताशा पहले हर मैच में हार्दिक को चीयर करने स्टेडियम आती थीं, लेकिन हाल ही में उन्हें नहीं देखा गया. यही कारण है कि सोशल मीडिया पर हार्दिक और नताशा को लेकर यह अनुमान लगाया जा रहा कि दोनों एक दूसरे से अलग हो चुके हैं. हार्दिक और नताशा ने मई 2020 में शादी की थी और जुलाई 2020 में उनके बेटे अगस्त्य का जन्म हुआ था.

फाइनल में हमारे तरीके में कोई बदलाव नहीं होगा : हेलमोट

एजेंसी। चेन्नई

चेन्नई। सनराइजर्स हैदराबाद के सहायक कोच सिमोन हेलमोट ने कहा कि पैट कमिंस की कुशल कप्तानी के दम पर उनकी टीम आईपीएल फाइनल में कोलकाता नाइट राइडर्स के खिलाफ अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने को तैयार है. दूसरे क्वालीफायर में राजस्थान रॉयल्स को 36 रन से हराने के बाद हेलमोट ने कहा कि टीम की शैली में केकेआर के खिलाफ कोई बदलाव नहीं होगा. उन्होंने मैच के बाद प्रेस कांफ्रेंस में कहा, हम अपनी शैली पर अडिग रहेंगे. हमने पूरे सत्र में ऐसे ही खेला है और इसी के दम पर फाइनल में हैं. फाइनल में भी हम ऐसे ही खेलेंगे. मुझे गर्व है कि दबाव के हालात में भी टीम ने अपना स्वाभाविक खेल नहीं छोड़ा. राहुल त्रिपाठी, ट्रेविस और हेनरिच क्लासेन ने पूरी पारी में लय कायम रखी. पिच के बारे में उन्होंने कहा, यह अच्छी विकेट है. हमारी शुरुआत अच्छी रही लेकिन हमने एक विकेट ज्यादा गंवा दिया. पारी आगे बढने के साथ आफ कटर और बाउंसर काम करने लगे. हम चाहते थे कि गेंद थोड़ी पुरानी हो जाए. स्पिनरों की भूमिका भी अहम रही. उन्होंने पैट कमिंस की निर्णय लेने की क्षमता और मुख्य कोच डेनियल विटोरी के साथ संबंधों की तारीफ की. उन्होंने कहा, कप्तान को श्रेय जाता है. उन्होंने सही समय पर सही फैसले लिये. वह भांप गए थे कि स्पिनर कब उपयोगी साबित होंगे. उनका और डेनियल का आपसी तालमेल अच्छा है और वे नये सुझाव लाते रहते हैं. वे खिलाड़ियों को खुलकर खेलने की आजादी देते हैं.

ब्रीफ खबरें

क्यूएसएफ क्वार्टर फाइनल में सेंथिल व अभय की हार

नयी दिल्ली। राष्ट्रीय स्क्वाश चैम्पियन वेलावान सेंथिल कुमार ने दोहा में पीएसए विश्व टूर ब्रांज टूर्नामेंट क्यूएसएफ 3 में शीर्ष वरीयता प्राप्त दुनिया के आठवें नंबर के खिलाड़ी मिस्र के तारिक मोमिन के खिलाफ काफी संघर्ष किया लेकिन जीत नहीं सके. दुनिया के 55वें नंबर के खिलाड़ी सेंथिल कुमार को मोमिन ने हराया. एशियाई खेलों के पदक विजेता भारत के अभय सिंह को मलेशिया के इयेन योउ एंग ने 11 . 6, 11 . 9, 11 . 4 से हराया.

अभिमन्यु लौरा ने निकोलोव को हराकर दूसरे दौर में प्रवेश किया

बैंकॉक। राष्ट्रीय चैम्पियनशिप के कांस्य पदक विजेता अभिमन्यु लौरा ने शानदार जज्बा दिखाते हुए शनिवार को यहां पेरिस ओलंपिक के लिए मुक्केबाजी विश्व क्वालीफायर के 80 किग्रा वर्ग के पहले दौर में बुल्गारिया के क्रिस्टियन निकोलोव पर जीत दर्ज की.अभिमन्यु ने धीमी शुरुआत की जिससे बुल्गारिया के 10 बार के राष्ट्रीय चैम्पियन निकोलोव ने पहले राउंड में दबदबा बना लिया.पर 21 साल के भारतीय मुक्केबाज ने तेजी से रणनीति बदली और दूसरे राउंड में आक्रामक हो गये .

सीनियर पीजीए में कट में प्रवेश करेंगे अटवाल

बेंटन हार्बर (मिशिगन)। भारत के अर्जुन अटवाल ने किचन एड सीनियर पीजीए गोल्फ चैम्पियनशिप में दूसरे दौर में डबल बोगी के बावजूद चार ओवर 75 के स्कोर के साथ कट में प्रवेश लगभग सुनिश्चित कर लिया. वहीं जीव मिल्खा सिंह पहले दौर में 69 के बाद 79 स्कोर ही कर सके. वह कट में प्रवेश से चूक जाएंगे. इंग्लैंड के रिचर्ड ब्लांड ने पांच अंडर 66 के स्कोर के साथ एक शॉट की बढत बना ली है.चैम्पियंस टूर विजेता स्कॉट डनलप दूसरे स्थान पर हैं.

अब आईपीएल में शिमरोन हेटमायेर पर लगा जुर्माना

चेन्नई। राजस्थान रॉयल्स के शिमरोन हेटमायेर पर सनराइजर्स हैदराबाद के खिलाफ दूसरे क्वालीफायर के दौरान आईपीएल की आचार संहिता के उल्लंघन के लिए मैच फीस का दस प्रतिशत जुर्माना लगाया गया है.
सनराइजर्स ने शुक्रवार को 36 रन से जीत दर्ज की. आयोजकों ने इसकी जानकारी नहीं दी कि हेटमायेर पर जुर्माना क्यो लगाया गया लेकिन यह आउट होने के बाद उनकी प्रतिक्रिया को लेकर हो सकता है.

इंडियन प्रीमियर लीग 2024 का खिताबी मुकाबला आज

केकेआर के सामने कमिंस के सनराइजर्स की कठिन चुनौती

एजेंसी। चेन्नई

एक तरफ क्रिकेट के कुशल रणनीतिकार गौतम गंभीर के कोलकाता नाइट राइडर्स और दूसरी तरफ आक्रामक बल्लेबाजी की नयी परिभाषा गढ़ने वाले पैट कमिंस के सनराइजर्स हैदराबाद. इंडियन प्रीमियर लीग में इस सत्र का सरताज बनने के लिए आखिरी तिलिस्म पर दोनों बेहतरीन टीमों के बीच रविवार को खिताबी मुकाबले में दर्शकों के लिये रोमांचक क्रिकेट की गारंटी रहेगी. आम तौर पर खेल में मुकाबले कप्तानों और उनकी टीमों के बीच होते हैं लेकिन यह आईपीएल फाइनल दीगर है. इसमें एक तरफ कोरबो, लोड़बो, जीतबो की सोच रखने वाले गंभीर का दिमाग है, तो दूसरी तरफ एक ऐसा आस्ट्रेलियाई कप्तान है, जिसने टीम को विजेताओं वाले तेवर दिये हैं. केकेआर के कप्तान के रूप में दूसरा आईपीएल फाइनल खेलने जा रहे श्रेयस अय्यर इस महामुकाबले में सहायक भूमिका में नजर आ रहे हैं. एक दशक पहले किसी ने सोचा भी नहीं होगा कि कमिंस छह महीने के भीतर वनडे विश्व कप, विश्व टेस्ट चैम्पियनशिप और एशेज जीतने वाले कप्तान बनेंगे. अब अगर वह सनराइजर्स को आईपीएल खिताब भी दिला देते हैं, तो यह सोने पे सुहागा होगा. सनराइजर्स के सहायक कोच सिमोन हेलमोट ने राजस्थान रॉयल्स के खिलाफ दूसरे क्वालीफायर में टीम की जीत के बाद कहा था, वह काफी व्यावहारिक, विनम्र और प्रभावी कप्तान है. उसके पास अलग अलग परिस्थितियों में प्रतिद्वंद्वी टीमों के खिलाफ सारी जानकारियां और आंकड़े रहते हैं. उन्होंने कहा, वह टीम बैठकों में समय बर्बाद नहीं करता. हमारी टीम बैठक आज 35 सेकंड की थी लेकिन उसके पास सारी सूचनायें थी. दोनों टीमों की टक्कर पहले क्वालीफायर में हुई थी जिसमें केकेआर ने सनराजइर्स को उम्दा गेंदबाजी के दम पर हराया था. केकेआर ने पिछली बार चेन्नई में 2012 में चेन्नई सुपर किंग्स के खिलाफ आईपीएल फाइनल खेला था, जिसमें बतौर कप्तान गंभीर ने खिताबी जीत दर्ज की थी. गंभीर की कप्तानी में केकेआर ने फिर 2014 में खिताब जीता और अब वह बतौर मेंटोर भी इसी टीम को खिताब दिलाने की दहलीज पर हैं. वह भारतीय टीम के मुख्य कोच बनने के सबसे प्रबल दावेदार भी है और आईपीएल खिताब से उनका दावा और पुख्ता होगा.

टीमें

कोलकाता नाइट राइडर्स : श्रेयस अय्यर (कप्तान), केएस भरत, रहमानुल्लाह गुरबाज, रिंकू सिंह, अंगकृष रघुवंशी, शेरफेन रदरफोर्ड, मनीष पांडे, आंद्रे रसेल, नीतिश राणा, वेंकटेश अय्यर, अनुकूल रॉय, रमनदीप सिंह, वरुण चक्रवर्ती, सुनील नारायण, वैभव अरोड़ा, चेतन सकारिया, हर्षित राणा, सुयश शर्मा, मिशेल स्टार्क, दुष्मंथा चमीरा, साकिब हुसैन, मुजीब उर रहमान, गट एटिकिंसन, अल्लाह गजांफर.

सनराइजर्स हैदराबाद: पैट कमिंस (कप्तान), अभिषेक शर्मा, ट्रैविस हेड, हेनरिक क्लासेन , एडेन मार्कराम, अब्दुल समद, नितीश रेड्डी, शाहबाज अहमद, भुवनेश्वर कुमार, जयदेव उनादकट, टी नटराजन, मयंक मार्कंडेय, उमरान मलिक, अनमोलप्रीत सिंह, ग्लेन फिलिप्स , राहुल त्रिपाठी, वाशिंगटन सुंदर, उपेंद्र यादव, जे सुब्रमण्यन, सनवीर सिंह, विजयकांत व्यासकांत, फजलहक फारूकी, मार्को यानसेन, आकाश महाराज सिंह, मयंक अग्रवाल.

मैच का समय : शाम 7.30 बजे

फाइनल से पहले केकेआर को सनराइजर्स के कप्तान पैट कमिंस ने दी चेतावनी!

एजेंसी। नयी दिल्ली

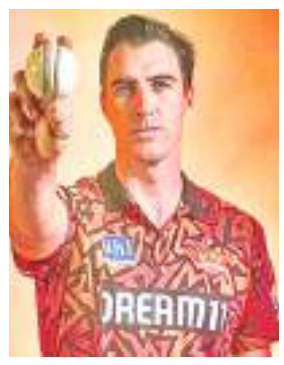

राजस्थान रॉयल्स को हराकर सनराइजर्स हैदराबाद फाइनल में पहुंच चुकी है. पैट कमिंस की अगुवाई वाली सनराइजर्स हैदराबाद के सामने फाइनल में कोलकाता नाइट राइडर्स की चुनौती होगी. वहीं, दोनों टीमों का आमना-सामना चेन्नई के चेपॉक स्टेडियम में होगा. बहरहाल, इस मैच से पहले सनराइजर्स हैदराबाद के कप्तान पैट कमिंस का बयान आया है. पैट कमिंस ने कोलकाता नाइट राइडर्स के खिलाफ अपनी टीम की संभावनाओं पर प्रतिक्रिया दी है. इस आस्ट्रेलियाई खिलाड़ी ने मानसिक तौर पर बढ़त बनाने के लिए कोलकाता नाइट राइडर्स को चेताया है कि हमारी टीम टूर्नामेंट की सबसे बेहतरीन टीम है, हमें कम करके आंकना भारी भूल होगी.

केकेआर टेबल टॉपर रही, तो सनराइजर्स हैदराबाद दूसरे नंबर पर : बताते चलें कि सनराइजर्स हैदराबाद ने 14 मैचों में 17 प्वॉइंट्स के साथ दूसरे नंबर पर फिनिश किया. वहीं, कोलकाता नाइट राइडर्स 14 मैचों में 20 प्वॉइंट्स के साथ टेबल टॉपर रही. हालांकि, इसके अलावा संजू सैमसन की अगुवाई वाली राजस्थान रॉयल्स ने 14 मैचों में 17 प्वॉइंट्स के साथ तीसरे नंबर पर फिनिश किया. इस तरह सनराइजर्स हैदराबाद और राजस्थान रॉयल्स के बराबर 17-17 प्वॉइंट्स थे, लेकिन पैट कमिंस की टीम को बेहतर नेट रन रेट का फायदा मिला.

मुझे नहीं पता कि हमारी टीम फेवरेट है या नहीं

सनराइजर्स हैदराबाद के कप्तान पैट कमिंस ने कहा, मुझे नहीं पता कि हमारी टीम फेवरेट है या नहीं... लेकिन इस बात में कोई शक नहीं कि हम सबसे बेहतरीन टीमों में एक हैं. उन्होंने कहा कि ठीक इसी तरह का अहसास पिछले दिनों वनडे वर्ल्ड कप जीतने वाली ऑस्ट्रेलियाई टीम के खिलाड़ियों के साथ था. बहरहाल, कोलकाता नाइट राइडर्स के खिलाफ फाइनल में हम अपना बेस्ट देने के लिए तैयार हैं. इससे पहले कोलकाता नाइट राइडर्स ने क्वॉलीफायर-1 में सनराइजर्स हैदराबाद को हराया था. लेकिन अब दोनों टीमें एक बार फिर फाइनल में आमने-सामने होंगी. लिहाजा, इस बार पैट कमिंस की अगुवाई वाली सनराइजर्स हैदराबाद हिसाब बराबर करने के इरादे से मैदान पर उतरेगी.

शर्मा ने बेल्जियम में कट में प्रवेश किया

एंटवर्प (बेल्जियम)। भारतीय गोल्फर शुभंकर शर्मा ने फर्स्ट नाइन में लगातार चार बर्डी लगाकर सोउडाल ओपन में आसानी से कट में प्रवेश कर लिया. दो बार के डीपी विश्व टूर चैम्पियन शर्मा ने पहले दौर में 69 और दूसरे में 67 स्कोर किया. वह संयुक्त 23वें स्थान पर है. स्पेन के नाचो एलविरा ने एकल बढत बना ली है जो शर्मा से आठ शॉट आगे हैं. भारत के ओमप्रकाश चौहान कट में प्रवेश से चूक गए, जिन्होंने 72 और 74 स्कोर किया.

भारतीय जूनियर महिला हॉकी टीम ने बेल्जियम को हराया

एजेंसी। एंटवर्प

भारतीय जूनियर महिला हॉकी टीम ने बेल्जियम को शूटआउट में 4.2 से हरा दिया. जबकि निर्धारित समय तक स्कोर 2 . 2 से बराबर था. कनिका सिवाच ने भारत के लिये दो गोल किये. भारत ने पहले ही क्वार्टर में पेनल्टी कॉर्नर पर गोल करके 2 . 0 की बढत बना ली. दूसरे क्वार्टर में कोई गोल नहीं हो सका और हाफटाइम तक भारत की बढत कायम रही. तीसरे क्वार्टर में बेल्जियम को पेनल्टी कॉर्नर मिला लेकिन गोल नहीं हो सका. आखिरी क्वार्टर में बेल्जियम ने लगातार दो गोल करके मुकाबले को शूटआउट में खींचा जिसमें भारत ने बाजी मारी.

सिंधू मलेशिया मास्टर्स खिताब से एक कदम दूर

फाइनल में आज चीन की खिलाड़ी से मिलेगी कड़ी चुनौती

एजेंसी। कुआलालंपुर

दो बार की ओलंपिक पदक विजेता पीवी सिंधू ने शनिवार को यहां थाईलैंड की बुसानन ओंगबामरुंगफान के खिलाफ पिछड़ने के बाद शानदार जीत दर्ज करते हुए 4,20,000 डॉलर (लगभग 3.49 करोड़ रुपए) पुरस्कार राशि वाले मलेशिया मास्टर्स बैडमिंटन के फाइनल में अपनी जगह पक्की की. पिछले दो साल से एक भी खिताब जीतने में नाकाम रही पांचवीं वरीयता प्राप्त सिंधू ने बीडब्ल्यूएफ वर्ल्ड टूर सुपर 500 टूर्नामेंट के सेमीफाइनल में 88 मिनट तक चले मैराथन मुकाबले में दुनिया की 20वें नंबर की बुसानन के खिलाफ 13-21, 21-16, 21-12 से जीत हासिल की. सिंधू ने इससे पहले 2022 सिंगापुर ओपन को अपने नाम करने में सफल रही थी और पिछले साल मैड्रिड स्पेन मास्टर्स में उपविजेता रही थी. यह बुसानन पर 19 मैचों में उनकी 18वीं जीत थी. विश्व रैंकिंग में 15वें स्थान पर काबिज सिंधू के सामने फाइनल में चीन की दूसरी वरीयता प्राप्त वांग झांग यी की चुनौती होगी. रैंकिंग में सातवें स्थान पर काबिज झांग के खिलाफ तीन मैचों में सिंधू ने दो जीत दर्ज की है. पिछले दो ओलंपिक में क्रमशः रजत और कांस्य पदक जीतने वाली सिंधू का पेरिस ओलंपिक से पहले लय में वापसी करना भारतीय खेलों के लिए अच्छी खबर है. इस सत्र की शुरुआत में घुटने की चोट से वापसी करने के बाद से उन्होंने पिछले कुछ टूर्नामेंटों में आक्रामक खेल दिखाया है.

विश्व पैरा एथलेटिक्स चैंपियनशिप: पक्ष में फैसला आने पर मिला फायदा

भारत को भालाफेंक में रजत और कांस्य

एजेंसी। कोबे (जापान)

भारत को विश्व पैरा एथलेटिक्स चैंपियनशिप में पुरुषों की एफ46 भालाफेंक स्पर्धा में दूसरे स्थान पर रहे श्रीलंका के दिनेश प्रियंथा हेराथ के खिलाफ शिकायत सही साबित होने पर रजत और कांस्य पदक दिया गया है. पुरुषों के एफ46 भालाफेंक में भारत के रिंकू हुड्डा और अजीत सिंह तीसरे और चौथे स्थान पर रहे थे लेकिन भारत ने विरोध दर्ज किया था कि हेराथ इस वर्ग में भागदारी के योग्य नहीं हैं. पैरा खेलों में समान शारीरिक अक्षमता वाले खिलाड़ियों को एक समूह में रखा जाता है, ताकि प्रतिस्पर्धा बराबरी की हो. एफ46 वर्ग भुजा में कमी , कमजोर मांसपेशियों वाले या बाहों में गति की निष्क्रिय सीमा वाले एथलीटों के लिए है, जिसमें एथलीट खड़े होकर प्रतिस्पर्धा करते हैं. भारतीय पैरालम्पिक समिति के एक अधिकारी ने कहा, हेराथ एफ46 श्रेणी का था ही नहीं. भारत के पक्ष में फैसला आने के बाद हेराथ को अयोग्य करार दिया गया. रिंकू को रजत और अजीत को कांस्य पदक दिया गया. मुख्य कोच सत्यनारायण ने कहा, हमने श्रीलंकाई खिलाड़ी के खिलाफ विरोध दर्ज कराया था, जो तोक्यो पैरालम्पिक में भी स्वर्ण जीत चुका है. वह इस वर्ग में भाग्य लेने की योग्यता नहीं रखता. अब रिंकू को रजत और अजीत को कांस्य पदक दिया गया है. भारत अब पांच स्वर्ण, पांच रजत और चार कांस्य के साथ छठे स्थान पर है. यह भारत का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन है.

तीरंदाजी विश्व कप भारतीय महिला टीम ने लगातार तीसरा स्वर्ण पदक जीता ,भारतीय कैंप में खुशी की लहर

भारतीय महिला कंपाउंड टीम ने स्वर्ण जीता, मिश्रित टीम को रजत

एजेंसी। येचियोन (दक्षिण कोरिया)

ज्योति सुरेखा वेन्नम, परनीत कौर और अदिति स्वामी की भारतीय तिकड़ी ने तीरंदाजी विश्व कप में महिला कंपाउंड वर्ग में लगातार तीसरा स्वर्ण पदक जीता जबकि मिश्रित टीम को रजत पदक मिला. दुनिया की नंबर एक भारतीय टीम ने तुर्की की हेजल बुरून, एइसे बेरा सुजेर और बेगम युवा की टीम को 232 . 226 से हराकर एक भी सेट गंवाये बिना पहला स्थान हासिल किया. एशियाई खेल चैम्पियन ज्योति हालांकि दूसरा स्वर्ण नहीं जीत सकी और प्रियांश के साथ कंपाउंड मिश्रित टीम फाइनल में अमेरिका की ओलिविया डीन और सायेर सुलिवान की जोड़ी से 155 . 153 से हार गई. ज्योति, परनीत और विश्व चैम्पियन अदिति ने विश्व कप स्वर्ण पदकों की हैट्रिक लगाई. उन्होंने पिछले महीने शंघाई में विश्व कप के पहले चरण में इटली को हराकर स्वर्ण जीता था. वहीं पिछले साल पेरिस में चौथे चरण में भी स्वर्ण हासिल किया था. कंपाउंड महिला टीम फाइनल में दूसरी वरीयता प्राप्त भारतीय टीम ने पहले दौर में सेंटर के पास तीन एक्स के साथ आगाज किया और अगले तीन तीरों पर एक एक अंक ही गंवाया. छह तीर के दूसरे दौर में भारत ने पांच परफेक्ट 10 और दो एक्स तथा एक 9 के स्कोर के साथ बढत चार अंक की कर ली. तीसरे दौर में तुर्की ने चार 10, एक एक्स लगातार वापसी की पूरी कोशिश की लेकिन भारत के पाच चार अंक की बढत थी. भारत ने एक बार फिर तीन 10 और एक एक्स के साथ 58 स्कोर करके जीत दर्ज की.

दुनिया की शीर्ष दो टीमों के बीच मुकाबले में अमेरिका ने कंपाउंड मिश्रित टीम वर्ग में शानदार वापसी करके स्वर्ण जीता. ज्योति और प्रियांश ने पहले दौर में 40 में से 39 अंक लेकर दो अंक की बढत बना ली थी. वे हालांकि इस प्रदर्शन को जारी नहीं रख सके और अमेरिकी टीम ने ब्रेक तक बराबरी कर ली. इसके बाद अमेरिकी टीम ने तीसरे दौर में परफेक्ट 40 स्कोर करके एक अंक की बढ़त बनाई. ज्योति और प्रियांश ने परफेक्ट 40 स्कोर करके मुकाबले को शूटआ में खींचा लेकिन उसमें उनके 38 अंक के मुकाबले अमेरिकी टीम ने 39 स्कोर किया.कंपाउंड वर्ग में प्रथमेश फुगे पहले व्यक्तिगत विश्व कप पदक से एक जीत दूर हैं. उन्होंने क्वार्टर फाइनल में 2021 विश्व चैम्पियन और दुनिया के छठे नंबर के तीरंदाज आस्ट्रिया के निको वीनेर को हराया.

राजस्थान की हार यशस्वी के आउट होते ही तय हो गयी : संगाकारा

एजेंसी। नयी दिल्ली

राजस्थान रॉयल्स के कोच कुमार संगाकारा ने सलामी बल्लेबाज यशस्वी जायसवाल के विकेट को एसआरएच वर्सेस आरआर क्वालीफायर-2 मैच का टर्निंग पॉइंट बताया है. राजस्थान ने पावरप्ले में 50 से अधिक रन बना लिए थे, मगर जैसे ही यशस्वी जायसवाल आउट हुए, तो उनकी टीम ताश के पत्तों की तरह ढह गई. मिडिल ऑर्डर में ना तो संजू सैमसन रन बना पाए और ना ही रियान पराग ने कुछ किया. इन दोनों बल्लेबाजों ने इस सीजन खूब रन बनाए हैं, मगर मुख्य मैच में दोनों फेल हो गए. बता दें, हैदराबाद ने इस मैच में पहले बैटिंग करते हुए 175 रन बोर्ड पर लगाए थे, इस स्कोर का पीछा करते हुए राजस्थान 139 ही रन बना सकी. एसआरएच ने 36 रनों से यह मैच जीत फाइनल का टिकट हासिल किया. कुमार संगाकारा ने मैच के बाद प्रेस कॉन्फ्रेंस में कहा, मुझे लगता है कि एक साथ कई विकेट गंवाना हमपर भारी पड़ा. हमारी शुरुआत बहुत अच्छी रही, पावरप्ले में हमारा स्कोर 51 रन था, हमें बस 14वें या 15वें ओवर तक 120 रन तक पहुंचने की जरूरत थी.

ब्रीफ खबरें

आग से झुलस कर महिला की हुई मौत

बेगूसराय । खाना बनाने के दौरान आग से झुलस कर घायल महिला की इलाज के दौरान मौत हो गई. घटना रिफाइनरी थाना क्षेत्र के मोसदपुर वार्ड नंबर 10 की है. मृतक महिला की पहचान मोसादपुर वार्ड नंबर 10 निवासी वीरू शर्मा की 30 वर्षीय पत्नी लक्ष्मी देवी के रूप में की गई है. परिजनों ने बताया है कि वह अपने घर में खाना बना रही थी. खाना बनाने के दौरान ही गैस चूल्हा अचानक भड़क उठा और महिला के शरीर में आग लग गई. आग लगते ही महिला चिल्लाने लगी और घर वाले ने अपने स्तर से बुझाने का भरसक प्रयास किया.

लमहरी गांव में लोगों ने किया वोट का बहिष्कार

छपरा । शनिवार को महाराजगंज लोकसभा क्षेत्र के मांझी विधनासभा के इन्यातपुर पंचायत के लमहरी गांव में लोगों ने वोट का बहिष्कार कर दिया. ग्रामीणों ने बताया कि इस गांव की आबादी एक हज़ार के करीब है. लेकिन आजतक इस गांव में सड़क का निर्माण नहीं कराया गया है. उन्होंने कहा कि कई बार अधिकारियों के आश्वासन के बाद हमलोगों ने वोट दिया. लेकिन सड़क नहीं बनाया गया. इस साल हमलोगों ने पूरी तरह से वोट बहिष्कार का निर्णय लिया है. जिससे करीब 650 मतदाताओं ने मतदान नहीं किया है. छपरा से डीएम ने कहा कि इसकी जानकारी अभी तक उन्हें नहीं मिली है.

धारदार हथियार से विवाहिता की हुई हत्या

भागलपुर । हबीबपुर थाना क्षेत्र में धारदार हथियार से एक विवाहिता की हत्या कर दी गयी. इसका आरोप पति पर लगाया जा रहा है. दोनों ने वर्षों पहले लव मैरिज किया था. घटना हबीबपुर थाना क्षेत्र अंतर्गत सदरुद्दीनचक की है. मोहल्ला निवासी मो इरशाद आलम की तीस वर्षीय पुत्री बीबी रेशमा की धारदार हथियार से हत्या कर दी गई. रेशमा के मायके वालों ने हत्या का आरोप महिला के पति परवेज आलम पर ही लगाया है. परवेज इसी मुहल्ले के रहने वाला है. घटना शुक्रवार रात की बताई जा रही है. घटना की सूचना मृतका की चार वर्षीय पुत्री के द्वारा नाना नानी को दी गई.

अब मैं लौट कर कभी भी राजद में नहीं जाऊंगी : हिना शहाब

संवाददाता । सीवान

सीवान लोकसभा सीट पर शनिवार को हुए मतदान में प्रतापपुर में निर्दलीय उम्मीदवार हिना शहाब भी वोट डालने पहुंचीं. वोट डालने के बाद उन्होंने कहा कि वोटरों से अपील है कि संयम से मतदान केंद्रों पर जाएं और अपने मताधिकार का प्रयोग करें. कैंपेनिंग के दौरान हमने जन-जन तक पहुंच कर अपनी बात पहुंचा दी है. जनता होशियार है.

जनता को पता है नेता नहीं सेवक चाहिए. एक सवाल के जवाब में उन्होंने साफ-साफ कहा कि अब लौट कर कभी आरजेडी में नहीं जाउंगी. इतना ही नहीं उन्होंने साफ तौर पर कहा कि शहाबुद्दीन साहब ने अपना फर्ज निभाया, लेकिन लालू

हिना नाराज

- राजद ने शहाबुद्दीन साहब के परिवार को नहीं संभाला
- जनता होशियार है. जनता को पता है नेता नहीं सेवक चाहिए

राजद ने शहाबुद्दीन साहब के परिवार को नहीं संभाला. शहाबुद्दीन साहब हर मुश्किल परिस्थिति में राजद के साथ रहे. उनके निधन के बाद हमारे परिवार की अनदेखी की गई या नहीं यह अलग विषय है. राजद तो शहाबुद्दीन साहब की पार्टी थी. वह पार्टी के संस्थापक सदस्य थे. उन्होंने जुबान दी थी की जब तक जिंदा हूं तब तक लालू के साथ हूं.

हिना शहाब यहीं नहीं रूकीं आगे कहा कि जीत गई तो सेवक के रूप में सिवान की सेवा करुंगी. राजद में लौटकर वापस कभी नहीं जाऊंगी. आगे कदम बढ़ गया वह कदम अब पीछे की ओर नहीं जायेगा. निर्दलीय उम्मीदवार हिना शहाब ने कहा कि नेता बड़े-बड़े वादे करते हैं, लेकिन वादे पूरे नहीं होते. मैं सेवक हूं. सीवान में बेरोजगारी, लचर शिक्षा व्यवस्था, चरमराई हुई स्वास्थ्य व्यवस्था सबसे बड़ा चुनावी मुद्दा है. दिल और जनता की आवाज है कि इस बार निर्दलीय चुनाव लड़ा जाए. इसलिये निर्दलीय मैदान में हूं. सभी समाज हिन्दू-मुस्लिम सबका समर्थन हमको मिल रहा है. मेरे मुकाबला किसी से नहीं है. सिवान परिवार हमारा है. सीवान के सभी लोग हमारे हैं. सीवान की बेटी हूं. मुझे पूरी उम्मीद है कि जनता की सेवा का मौका इस बार मुझे मिलेगा. बता दें कि मोहम्मद शहाबुद्दीन चार बार सांसद रहे थे. हिना शहाब के निर्दलीय मैदान में होने से मुकाबला त्रिकोणीय हो गया है. यहां से जदयू प्रत्याशी विजय लक्ष्मी देवी हैं.

सीवान में राजद ने अवध बिहारी चौधरी को प्रत्याशी बनाया है. यहां कड़ा मुकाबला देखने को मिल सकता है. आरजेडी से इस बार हिना शहाब को टिकट नहीं मिला. 2009, 2014, 2019 में टिकट मिला था. सीवान लोकसभा क्षेत्र में करीब 18 लाख मतदाता हैं. इनमें 9,85,125 पुरुष और 7,90,829 महिला मतदाता हैं. जातियों समीकरण पर नजर डालें तो यहां मुस्लिम लगभग 3 लाख, यादव लगभग 2.5, वहीं कुशवाहा वोर्टस की संख्या लगभग 1.25 लाख है, जबकि सहनी 80 हजार के आस-पास हैं. दूसरी ओर सवर्ण जातियों के मतदाताओं की संख्या लगभग 4 लाख और ईबीसी 2.5 लाख हैं.

आरोपी को गिरफ्तार करने गई पुलिस पर हमला

किशनगंज । आरोपी को गिरफ्तार करने गई पुलिस पर ग्रामीणों ने हमला कर दिया. घटना बिहार-बंगाल सीमा से सटे रामपुर विलायतीबाडी में हुई. इस दौरान पुलिस की गाड़ी पर भी पथराव किया. हमले में किशनगंज पुलिस को हवाई फायरिंग भी करनी पड़ी. हमले में तीन पुलिसकर्मी घायल हो गए, बीते 15 मई को सदर थाना क्षेत्र के गाछपाड़ा के पास ड्राइवर को अगवा कर मक्का लदे ट्रैक्टर की लूट हुई थी. मामला दर्ज होने के बाद पुलिस आरोपियों की तलाश में जुटी थी. बताया जाता है कि पुलिस टीम मामले में आरोपी नूर आलम का पीछा करते हुए दौला पंचायत पहुंची.

मोदी ने पटना, काराकट और बक्सर में जनसभा में महागठबंधन पर जमकर किया प्रहार, बोले

लालटेनियों ने बिहार में अंधेरा फैलाया

संवाददाता । पटना

बिहार में चुनाव के साथ ही नेताओं का दौरा जारी है. एक तरफ एनडीए तो दूसरी तरफ महागठबंधन चुनाव प्रचार में लगी है. इसी क्रम में शनिवार को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी बिहार पहुंचे. पीएम नरेंद्र मोदी ने पटना के बिक्रम में भाजपा प्रत्याशी रामकृपाल यादव के पक्ष में जनसभा की. पटना के बिक्रम के बाद वह काराकाट में राष्ट्रीय लोकदल के प्रत्याशी उपेंद्र कुशवाहा और बक्सर में भाजपा प्रत्याशी मिथिलेश तिवारी के पक्ष में जनसभा किया.

पीएम ने बिक्रम में चुनावी जनसभा को संबोधित करते हुए कहा कि आगामी 4 जून के लिए तैयार मनेर का लड्डू रखें. यहां के लड्डू में बड़ी ताकत होती है. पीएम ने लोगों का उत्साह देखकर कहा कि ऐसा लग रहा कि आप लोग मनेर का लड्डू खाकर आए हैं. चुनाव के नतीजों का एग्जिट पोल चालू हो गया है. इंडी वाले गालियां दें तो मतलब साफ है कि एनडीए की सफलता का एग्जिट पोल आ गया है.

4 जून को नया रिकॉर्ड बनेगा. इसलिए 4 जून के लिए तैयार रखें मनेर का लड्डू. पीएम ने कहा कि आपके लिए 24 घंटे मेहनत करने वाला सिर्फ मोदी है. दूसरी तरफ 24 घंटे आप से झूठ बोलने वाला इंडी गठबंधन है. एक तरफ मैं हूं, जो 24

बोले पीएम

- पटना के बिक्रम में भाजपा प्रत्याशी हैं रामकृपाल यादव
- रोहतास के काराकाट में हैं एनडीए प्रत्याशी उपेंद्र कुशवाहा
- बक्सर में भाजपा के प्रत्याशी हैं मिथिलेश तिवारी

घंटे सातों दिन विकसित भारत बनाने में जुटा हूं. दूसरी तरफ यह इंडी गठबंधन है. इनके पास काम नहीं है. समय ही समय है. इसलिए उनकी छुट्टी कर दी गई है. कुछ जेल में रहते हैं, कुछ बाहर हैं. इंडी गठबंधन दिन हो या रात, मोदी को गाली देने में जुटे रहते हैं. पीएम मोदी ने कहा कि इंडी वालों का एक ही सूत्र है, अपना काम बनता-भाड़ में जाए जनता. बिहार में लालटेनिया लेकर घूम रहे हैं. ये लालटेन सिर्फ एक ही घर में रोशनी करती है.

चारों तरफ अंधेरा हो जाए तो हो जाए. 30 साल में इसने एक ही घर में रोशनी की और चारों तरफ अंधेरा किया. लालटेनियों ने बिहार में अंधेरा ही फैलाया है. दूसरे के बेटे-बेटियों को पूछते तक नहीं हैं. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि यह चुनाव सांसद चुनने का नहीं बल्कि देश का पीएम चुनने का है. भारत को ऐसा पीएम चाहिए जो इस दमदार देश का दम दुनिया के सामने दमखम के साथ रख सके.

पीएम ने कहा कि भारत को ऐसा पीएम चाहिए जो दुनिया के सामने अपनी बात दमखम के साथ रख सके. वहीं दूसरी और यह इंडी वाले हैं. इनकी योजना पांच साल में पांच पीएम देने की है. ये पांच पीएम के दावेदार कौन-कौन हैं. गांधी परिवार का बेटा, सपा परिवार का बेटा, आप पार्टी के आका की पत्नी, नकली शिवसेना परिवार का बेटा. ये सारे परिवारवाद मिलकर पीएम की कुर्सी पर म्यूजिकल चेयर खेलना चाहते हैं.

पीएम ने कहा कि बिहार ने एससी, एसटी, ओबीसी आरक्षण के लिए लंबी लड़ाई लड़ी है. हमारा संविधान कहता है कि भारत में धर्म के आधार पर आरक्षण नहीं होगा. मगर राजद, कांग्रेस के लोग मुसलमानों को आरक्षण देना चाहते हैं. वर्ष 2024 के चुनाव में जब मैंने इन दलों की साजिश का पर्दाफाश किया तो इनकी एससी, एसटी और ओबीसी आरक्षण विरोधी करतूतें सामने आ गई हैं.

सारे शहजादों का शटर गिरने वाला है

बक्सर में पीएम नरेंद्र मोदी ने भोजपुरी भाषा में लोगों को प्रणाम किया. कहा कि अब साफ दिख रहा है कि सारे शहजादों का शटर गिरने वाला है. बिहार के शहजादे अब आराम से जमानत और अमानत का काम देखेंगे. कांग्रेस के शहजादे ने भी छुट्टियों की तैयारी भी शुरू कर दी है. यूपी के शहजादे को तो शायद सदमा लग गया होगा. कल कह रहे थे कि बनारस में मोदी चुनाव हारने वाला है. इतना ही नहीं इन्होंने यह भी कह दिया कि यूपी में 80 के 80 सीटें इंडी गठबंधन के लोग जीत रहे हैं. यूपी के शहजादे भाषण में यह बात बोल रहे थे. बार-बार साइकिल पंचर होने का सदमा लग गया या फिर कांग्रेस के शहजादे की संगत में आ गए. उन्हें ऐसी संगत से बचना चाहिए. 2024 के चुनाव में वैसे ही इनकी गपोड़बाजी खुल जाने वाली है, जैसे 2022 के विधानसभा चुनाव में हुआ. पीएम मोदी ने कहा कि कांग्रेस और राजद वाले सामाजिक न्याय का मुखौटा पहने हुए हैं. अपने वोट बैंक के लिए यह लोग तुष्टिकरण की राजनीति करते हैं.

चुनाव के बाद तेजस्वी का रोना शुरू हो जाएगा: शाहनवाज

संवाददाता । पटना

भाजपा नेता शाहनवाज हुसैन ने पूर्व डिप्टी सीएम तेजस्वी यादव पर पटलवार किया. राजद नेता के गाना गाने को लेकर शाहनवाज ने कहा कि अच्छा तेजस्वी यादव अब गाना भी गाने लगे हैं. शुरू से गाना गा रहे हैं. आज कल भाषण की जगह पर वह गाना गाने लगे हैं. गाना शुरू हो गया है.

चुनाव के बाद उनका रोना भी शुरू हो जाएगा. दरअसल, कुछ दिन पहले तेजस्वी ने गाने की लाइन सुनाते हुए कहा था कि ''टन टनाटन टनटन तारा, बीजेपी हो गई नौ दो ग्यारह''. तेजस्वी ने दावा करते हुए भाजपा बहुत जल्दी जा रही है. शनिवार को पटना एयरपोर्ट पर मीडिया के साथ बातचीत के दौरान शाहनवाज हुसैन ने कहा कि राजद गाना रोना कर रही है. इसका मतलब है कि उनका इस बार खाता भी नहीं खुल पाएगा. पिछली बार जीरो पर थे. इस बार भी जीरो हो जाएंगे. इसलिए भी अब गाना रोना शुरू हो गया है. शाहनवाज ने कहा कि आपको सिर्फ गाना दिख रहा है. कई लोगों को रोना भी दिख रहा है. वहीं जब शाहनवाज हुसैन से पूछा गया कि शशि थरूर कह रहे हैं कि भाजपा 300 से ज्यादा नहीं कर पाईगी तो उन्होंने कहा कि कांग्रेसी भी मान रहे हैं कि नरेंद्र मोदी की सरकार बन रही है. हमलोग मान रहे हैं कि इस बार हमलोग 400 के पार जा रहे हैं. उन्होंने कहा कि कांग्रेस की आदत है वोट बैंक के लिए विरोध करने की. हम लोग ट्रिपल तलाक कानून जो लाए थे, उसका भी विरोध किया था कांग्रेस ने. वो वोट बैंक की राजनीति करना चाहती है.

पदाधिकारी पर हमले के मामले में तीन गिरफ्तार

जमुई । पदाधिकारी पर हमले के मामले में पुलिस ने तीन अपराधियों को गिरफ्तार किया. घटना जिले के खैरा थाना क्षेत्र में हुआ था. बताया जाता है कि केंदुआ पेट्रोल पंप के पास सोनो प्रखंड के प्रखंड पंचायत राज पदाधिकारी उपेंद्र कुमार वर्मा के साथ जमुई लौटते वक्त पांच की संख्या में अपराधी तत्वों द्वारा मारपीट की गई थी. प्रारंभिक पूछताछ में यह जानकारी मिली थी कि उनकी गाड़ी को आपराधिक तत्वों द्वारा जबरदस्ती सड़क पर रोक दिया गया और उन्हें गाड़ी से उतार दिया गया. फिर, अपराधियों द्वारा उन्हें सड़क से थोड़ी दूर ले जाकर उनके साथ मारपीट करते हुए उन्हें गंभीर रूप से घायल किया गया. घटना के कुछ घंटों बाद ही जमुई डीएम राकेश कुमार और एसडीपीओ सतीश सुमन ने बीपीआरओ उपेंद्र वर्मा से उनके आवास पर मुलाकात की और कड़ी कार्रवाई का आश्वासन दिया.

कारोबार

आईसीआईसीआई का प्रू प्लैटिनम लॉन्च

रांची । कंपनी का पहला यूनिट-लिंक्ड प्रोडक्ट आईसीआईसीआई प्रू प्लैटिनम लॉन्च किया गया. यह डिस्ट्रीब्यूटर पे-आउट को उनके ग्राहकों की फंड वैल्यू के अनुरूप बनाता है. यानी डिस्ट्रीब्यूटर कमीशन उनके ग्राहकों के एसेट अंडर मैनेजमेंट से जुड़ा होता है. बैंक के चीफ डिस्ट्रीब्यूशन ऑफिसर अमित पाल्टा ने कहा कि जो डिस्ट्रीब्यूटर्स के भुगतान को उनके ग्राहकों के फंड मूल्य के अनुरूप बनाने और लंबी अवधि में दोनों के हितों को बढ़ावा देने के लिए डिजाइन किया गया है.

भारत की वृद्धि का मॉडल चीन जैसा नहीं होगा

न्यूयॉर्क । भारत के विकास मिशन पर आगे बढ़ने के साथ यह साफ है कि उसका रास्ता चीन जैसा नहीं होगा, क्योंकि वहां अलग वातावरण और क्षमताएं हैं. क्षमता निर्माण आयोग के चेयरमैन आदिल जैनुलभाई ने यह बात कही. उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भारत को एक विकसित देश बनाने का सपना सामने रखा है, और इस बारे में कई दृष्टिकोण हैं और ''''हम मानते हैं कि यह अलग तरह से होगा. अगले 25 वर्षों के लिए भारत की वृद्धि का मॉडल चीन जैसा नहीं होगा.

वित्त वर्ष 2024-25 के लिए सीआईआई 363 है

नयी दिल्ली । आयकर विभाग ने अचल संपत्ति, प्रतिभूतियों और आभूषण की बिक्री से होने वाले दीर्घकालिक पूंजीगत लाभ की गणना के लिए वित्त वर्ष 2024-25 के लिए लागत मुद्रास्फीति सूचकांक को अधिसूचित किया है. लागत मुद्रास्फीति सूचकांक (सीआईआई) का उपयोग करदाताओं द्वारा मुद्रास्फीति को समायोजित करने के बाद पूंजीगत संपत्तियों की बिक्री से होने वाले लाभ की गणना करने के लिए किया जाता है. केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड (सीबीडीटी) की एक अधिसूचना के अनुसार वित्त वर्ष 2024-25 (आकलन वर्ष 2025-26) के लिए सीआईआई 363 है. पिछले वित्त वर्ष के लिए सीआईआई 348 था और 2022-23 के लिए यह 331 था.

आईटी कंपनी गूगल ने करीब 2907 करोड़ रुपये का निवेश किया है

गूगल ने फ्लिपकार्ट में किया निवेश

भाषा । नयी दिल्ली

अमेरिकी कंपनी गूगल निवेश कर कारोबार का विस्तार करने में लगी है. इसी क्रम में गूगल ने वॉलमार्ट के स्वामित्व वाली ई-कॉमर्स कंपनी फ्लिपकार्ट में निवेश किया है. दिग्गज आईटी कंपनी गूगल ने 350 मिलियन डॉलर यानी करीब 2907 करोड़ रुपये का निवेश किया है. फ्लिपकार्ट द्वारा एक अरब डॉलर हासिल करने के लिए किए जा रहे हालिया फंडिंग राउंड में गूगल ने ये इनवेस्टमेंट किया है. फ्लिपकार्ट ने यह राउंड साल 2023 में शुरू किया था.

इसके साथ ही वह फ्लिपकार्ट की पार्टनर बन गई है. अब भारतीय ईकॉमर्स सेक्टर में अमेजन, मीशो, जिओ मार्ट और टाटा डिजिटल को कड़ी टक्कर मिल सकती है. इससे भारत के ई-कॉमर्स सेक्टर में बड़ा बदलाव देखने को मिल सकता है. फ्लिपकार्ट फंड जुटाने के लिए मौजूदा राउंड में एक अरब डॉलर जुटा रही है. फ्लिपकार्ट को अपनी मूल कंपनी एवं अमेरिकी रिटेल दिग्गज वॉलमार्ट से 60 करोड़ डॉलर का फाइनेंस सपोर्ट का आश्वासन भी मिला है. निवेश शर्तों से अवगत लोगों के मुताबिक, इस निवेश दौर में फ्लिपकार्ट का

गूगल फ्लिपकार्ट

- फ्लिपकार्ट का मूल्यांकन 35-36 बिलियन डॉलर आंका गया
- वॉलमार्ट कंपनी की भारतीय ई-रिटेलर में 85% हिस्सेदारी

मूल्यांकन 35-36 बिलियन डॉलर आंका गया है, जो कि फोनपे के समूह से अलग होने के बाद पिछले वर्ष 33 बिलियन डॉलर था. अमेरिकी खुदरा दिग्गज वॉलमार्ट, जिसकी भारतीय ई-रिटेलर में 85% हिस्सेदारी है, पिछले साल शुरू हुए इस फंडिंग अभियान में 600 मिलियन डॉलर का निवेश किया है.

इस फंडिंग राउंड से बेंगलुरु स्थित ईकॉमर्स फर्म की वैल्यूएशन लगभग पांच से 10% बढ़कर 36 अरब डॉलर हो सकती है. पिछली बार फ्लिपकार्ट की वैल्यूएशन 33 अरब डॉलर आंकी गई थी. वैल्यूएशन में यह कमी फोनपे के अलग होने के बाद आई थी. फिनटेक कंपनी फोनपे को दिसंबर, 2022 में फ्लिपकार्ट से हटाकर अलग कंपनी बना दिया गया था. मामले की जानकारी रखने वाले एक व्यक्ति ने कहा कि गूगल ने यह सौदा इसलिए किया क्योंकि फ्लिपकार्ट ई-कॉमर्स सेक्टर में अग्रणी कंपनी है. कंपनी फंडिंग राउंड से मिले पैसों का इस्तेमाल अपने इंफ्रास्ट्रक्चर, सेलर सपोर्ट इकोसिस्टम, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और जेनरेटिव एआई जैसी एडवांस टेक्नोलॉजी को बढ़ाने में करेगी. कंपनी के बयान में कहा गया है कि गूगल के प्रस्तावित निवेश और क्लाउड सहयोग से फ्लिपकार्ट को अपना कारोबार बढ़ाने और देश भर में ग्राहकों की सेवा के लिए अपने डिजिटल बुनियादी ढांचे के आधुनिकीकरण में मदद मिलेगी. योजना से अवगत लोगों ने बताया कि ई-रिटेलर इस पूंजी का एक बड़ा हिस्सा अपने क्विक कॉमर्स व्यवसाय में निवेश करने के लिए इस्तेमाल करेगा, जिसे जुलाई में लॉन्च किया जाना है.

उम्मीद है कि फ्लिपकार्ट आने वाले सप्ताह में चुनिंदा स्थानों पर इस सेवा का ट्रायल शुरू कर देगा, उसके बाद इसे सभी कस्टमर्स के लिए खोल देगा. कंपनी ने कहा कि इससे देश भर में ग्राहकों को सेवा देने के लिए उसके डिजिटल बुनियादी ढांचे को मॉडर्न बनाने में मदद मिलेगी. साथ ही कंपनी को टियर-टू और थ्री शहरों और ग्रामीण भारत में अगले 20 करोड़ ग्राहकों तक पहुंचने में मदद मिलेगी. विशेषज्ञों की मानें तो भारत में ई-कॉमर्स एक उभरता बाजार है. साल 2030 तक भारत में ई-कॉमर्स मार्केट का साइज बढ़कर 325 बिलियन डॉलर पर पहुंच जाने वाला है. इस पर हर किसी की नजर है. ई-कॉमर्स के मार्केट में आने जा रही इस शानदार तेजी का फायदा डिजिटल इकोनॉमी को भी होने वाला है. अनुमान है कि साल 2030 तक भारत में डिजिटल अर्थव्यवस्था का आकार बढ़कर 800 बिलियन डॉलर पर पहुंच सकता है. अभी भारत में ई-कॉमर्स के मार्केट का साइज करीब 70 बिलियन डॉलर है.

यह भारत के कुल खुदरा बाजार का महज 7% है. दरअसल भारत में इंटरनेट की पहुंच का व्यापक स्तर पर विस्तार हुआ है. साल 2022 तक भारत की 52 फीसदी आबादी तक इंटरनेट पहुंच चुका था. यानी 2022 तक भारत में करीब 76 करोड़ लोग इंटरनेट का इस्तेमाल कर रहे थे.

मेघालय में निजी क्षेत्र से आएगा अब 8,000 करोड़ रुपये का निवेश

तूरा । मेघालय के मुख्यमंत्री कोनराड के संगमा ने शनिवार को कहा कि प्रदेश चालू वित्त वर्ष में निजी क्षेत्र से 8,000 करोड़ रुपये के निवेश को आकर्षित करने के लिए तैयार है. उन्होंने इसका श्रेय राज्य को 10 अरब डॉलर की अर्थव्यवस्था में बदलने के उद्देश्य से लाई गई नई औद्योगिक नीति को दिया है. उन्होंने तुरा में ''मानव विकास नेतृत्व कार्यक्रम'' पर एक कार्यशाला को संबोधित करते हुए कहा कि मेघालय में निवेश नई औद्योगिक नीति का परिणाम है. इस नीति ने व्यापार सुगमता के लिए एक पारिस्थितिकी तंत्र बनाया है. संगमा ने पिछली नीतियों को निवेशकों को हतोत्साहित करने वाला बताते हुए कहा कि प्रणाली थकाऊ और समय लेने वाली थी. हमारी नई औद्योगिक नीति ने एक निर्दिष्ट समयसीमा के भीतर विभिन्न वैधानिक जरूरतों को मंजूरी देने के लिए एक रूपरेखा प्रदान की है, जिससे निवेशकों को सुविधा हो रही है. उन्होंने खुलासा किया कि अकेले पिछले साल लगभग 4,000 करोड़ रुपये का निवेश जुटाया गया. इसमें 450 मेगावाट बिजली पैदा करने के लिए 2,500 करोड़ रुपये का ताप विद्युत संयंत्र, एक एथनॉल संयंत्र, एक पेय पदार्थ विनिर्माण इकाई और एक पांच सितारा होटल श्रृंखला शामिल है.

बिजली की अधिकतम मांग 240 गीगावाट पर पहुंची

नयी दिल्ली । भारत की बिजली मांग शुक्रवार को चालू सत्र की नई ऊंचाई 239.96 गीगावाट पर पहुंच गई. देश के विभिन्न हिस्सों में पारे के बढ़ते स्तर के कारण एयर कंडीशनर (एसी) और कूलर जैसे उपकरणों के अत्यधिक उपयोग के कारण बिजली की मांग रिकॉर्ड स्तर पर पहुंची है. बिजली मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार, बिजली की अधिकतम मांग या दिन में सबसे अधिक आपूर्ति शुक्रवार को 239.96 गीगावाट दर्ज की गई, जो इस साल गर्मी के मौसम में अब तक की अधिकतम है. बिजली मंत्रालय के आंकड़ों के मुताबिक, गुरुवार को यह 236.59 गीगावाट थी, जबकि बुधवार को बिजली की अधिकतम मांग 235.06 गीगावाट थी. बिजली की मांग का सर्वकालिक उच्च स्तर 243.27 गीगावाट सितंबर, 2023 में दर्ज किया गया था. इस गर्मी के मौसम में यह रिकॉर्ड टूट सकता है. इसी महीने बिजली मंत्रालय ने मई के लिए दिन के दौरान 235 गीगावाट और शाम के समय 225 गीगावाट और जून, 2024 के लिए दिन के दौरान 240 गीगावाट और शाम के समय 235 गीगावाट की अधिकतम बिजली मांग का अनुमान लगाया था. उद्योग विशेषज्ञों का मानना है कि मई में बिजली की मांग पहले से ही 240 गीगावाट के स्तर के आसपास है.

भारत में स्टार्टअप पारिस्थितिकी तंत्र परिपक्व: राघवन

नयी दिल्ली । अमेजन वेब सर्विसेज (एडब्ल्यूएस) के वरिष्ठ अधिकारी कुमार राघवन ने कहा है कि भारत में स्टार्टअप पारिस्थितिकी तंत्र परिपक्व है और इसमें कई अनुकूल परिस्थितियां भारत को दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनाने के लिए प्रेरित कर रही हैं. राघवन भारत और दक्षिण एशिया में एडब्ल्यूएस के स्टार्टअप प्रमुख हैं. राघवन ने पीटीआई-भाषा से जीवंत भारतीय स्टार्टअप परिदृश्य पर चर्चा की और इसकी ताकत तथा नवाचार क्षमता पर प्रकाश डाला. हम पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था हैं और तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की ओर अग्रसर हैं. इसमें योगदान देंने वाले कारक श्रम वृद्धि, बुनियादी ढांचे की वृद्धि और दक्षता में सुधार हैं, जहां रचनात्मक कृत्रिम मेधा (जेनएआई) जैसी प्रौद्योगिकियां अपनी भूमिका निभाएंगी. इनके अलावा एक बड़े डेवलपर पारिस्थितिकी तंत्र की मौजूदगी, देश में उत्पाद बनाने और दुनिया भर में सेवा देने की क्षमता और उत्पादन से जुड़े प्रोत्साहन (पीएलआई) योजना जैसी नियामक अनुकूल परिस्थितियां भी हैं.

ईआईडी पैरी इंडिया का शुद्ध लाभ 294.30 करोड़ रुपये

चेन्नई । ईआईडी पैरी इंडिया लिमिटेड का जनवरी-मार्च, 2024 तिमाही का एकीकृत शुद्ध लाभ 294.30 करोड़ रुपये रहा है. कंपनी ने बताया कि पिछले साल समान तिमाही में कंपनी का एकीकृत शुद्ध लाभ 286.90 करोड़ रुपये रहा था. कंपनी के वित्तीय प्रदर्शन पर प्रबंध निदेशक एस सुरेश ने कहा कि शून्य निर्यात, उच्च गन्ना लागत, गन्ने से कम वसूली और सरकार की डिस्टेलरी उत्पाद मिश्रण नीति में बदलाव के कारण पिछले वर्ष की तुलना में एकल चीनी खंड का परिचालन प्रदर्शन कम था. वित्त वर्ष 2023-24 के लिए एकीकृत कर पश्चात लाभ घटकर 1,617.57 करोड़ रुपये रह गया, जो एक साल पहले समान अवधि में 1,827.74 करोड़ रुपये था. समीक्षाधीन तिमाही के दौरान एकीकृत कुल आय घटकर 5,680.02 करोड़ रुपये रह गई, जबकि उससे पिछले वर्ष की इसी तिमाही में यह 6,865.28 करोड़ रुपये थी. पिछले वित्त वर्ष के लिए एकीकृत कुल आय घटकर 29,716.92 करोड़ रुपये हो गई, जो एक साल पहले 35,283.02 करोड़ रुपये थी.

रिलायंस इंडस्ट्रीज ने सीसीआई से मांगी मंजूरी

नयी दिल्ली । अरबपति कारोबारी मुकेश अंबानी की कंपनी रिलायंस इंडस्ट्रीज ने वायाकॉम18 और स्टार इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (एसआईपीएल) के विलय के लिए भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग (सीसीआई) से मंजूरी मांगी है. सीसीआई ने शुक्रवार को कहा कि प्रस्तावित लेनदेन का मकसद वायाकॉम18 और एसआईपीएल के मनोरंजन व्यवसायों (कुछ अन्य चिन्हित व्यवसायों के साथ) को जोड़ना है. वायाकॉम18, रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड (आरआईएल) समूह का हिस्सा है, जबकि द वॉल्ट डिज्नी कंपनी (टीडब्ल्यूडीसी) के पास एसआईपीएल का स्वामित्व है. नियामक ने कहा कि लेनदेन के बाद एसआईपीएल एक संयुक्त उद्यम (जेवी) बन जाएगी, जिसे आरआईएल, वायाकॉम18 और टीडब्ल्यूडीसी की सहायक कंपनियों द्वारा संयुक्त रूप से संचालित किया जाएगा. आरआईएल ने नोटिस में कहा कि प्रस्तावित लेनदेन से भारत में प्रतिस्पर्धा पर कोई उल्लेखनीय प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा.

अर्थव्यवस्था

भारत का विदेशी मुद्रा भंडार 17 मई को समाप्त सप्ताह में 4.55 अरब डॉलर बढ़ गया

भारत का विदेशी मुद्रा भंडार 648.7 अरब डॉलर

भाषा । नयी दिल्ली

देश की मजबूत अर्थव्यवस्था का असर दिखने लगा है. इसी का असर है कि आज भारत का विदेशी मुद्र भंडार तेजी से बढ़ रहा है.

आरबीआई ने विदेशी मुद्रा भंडार से जुड़े लेटेस्ट आंकड़े पेश किए. इसमें 17 मई को समाप्त हुए सप्ताह तक मौजूद देश के विदेशी मुद्रा भंडार की जानकारी दी गई. जिसमें विदेशी मुद्रा भंडार 17 मई को समाप्त सप्ताह में 4.55 अरब डॉलर बढ़ गया.

इस बढ़त के साथ यह 648.7 अरब डॉलर के नए रिकॉर्ड स्तर पर पहुंच गया. यह विदेशी मुद्रा भंडार में बढ़ोतरी का लगातार तीसरा सप्ताह है. इससे पहले के सप्ताह में यह 2.56 अरब डॉलर बढ़कर 644.15 अरब डॉलर रहा था. पांच अप्रैल को समाप्त सप्ताह में यह 648.56 अरब डॉलर के सर्वकालिक ऊंचे स्तर पर पहुंच गया था.

भारत की तरह ही 17 मई खत्म हुए हफ्ते के दौरान पाकिस्तान के विदेशी मुद्रा भंडार में भी इजाफा हुआ है. यह 2.20 करोड़ डॉलर बढ़कर 9.2 अरब डॉलर पर पहुंच गया. भारतीय रिजर्व बैंक के आंकड़ों के मुताबिक, 17 मई को समाप्त सप्ताह में मुद्रा भंडार का अहम हिस्सा मानी जाने वाली विदेशी मुद्रा आस्तियां (एफसीए) 3.36 अरब डॉलर बढ़कर 569.01 अरब डॉलर हो गई. डॉलर के संदर्भ में उल्लेखित विदेशी मुद्रा आस्तियों में विदेशी मुद्रा भंडार में रखे गए यूरो, पाउंड और येन जैसी गैर-अमेरिकी मुद्राओं की घट-बढ़ का प्रभाव शामिल होता है.

एफसीए का इस्तेमाल केवल उन लेनदेन के लिए किया जा सकता है जो विदेशी मुद्रा में किए जाते हैं.

विदेशी मुद्रा

- विदेशी मुद्रा भंडार में बढ़ोतरी का तीसरा सप्ताह है
- पाकिस्तान का विदेशी मुद्रा भंडार 9.2 अरब डॉलर

इसका उपयोग घरेलू लेनदेन के लिए नहीं किया जाता है. रिजर्व बैंक ने कहा कि समीक्षाधीन सप्ताह के दौरान स्वर्ण आरक्षित भंडार यानी गोल्ड रिजर्व का मूल्य 1.24 अरब डॉलर बढ़कर 57.19 अरब डॉलर हो गया. विशेष आहरण अधिकार यानी एसडीआर 11.3 करोड़ डॉलर की बढ़त के साथ 18.17 अरब डॉलर हो गया. रिजर्व बैंक के मुताबिक, समीक्षाधीन सप्ताह में अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष (आईएमएफ) के पास भारत की आरक्षित जमा 16.8 करोड़ डॉलर घटकर 4.33 अरब डॉलर रह गई.

ब्रीफ खबरें

हिमाचल में सड़क दुर्घटना, 13 घायल

मंडी । हिमाचल प्रदेश के मंडी में शनिवार को 13 पर्यटक उस समय घायल हो गए जब उनके वाहन की एक ट्रक से टक्कर हो गयी. पुलिस ने यह जानकारी दी. मंडी के सहायक पुलिस अधीक्षक सागर चंद ने कहा कि यह घटना शनिवार सुबह हुई जब 16 पर्यटकों को ले जा रहा टैंपो ट्रैवलर वाहन बारादिबीर के निकट सामने से आ रहे एक ट्रक से टकरा गया. पुलिस ने कहा कि सभी घायलों को जोनल अस्पताल में भर्ती कराया गया जहां वे खतरे से बाहर हैं.

मप्र में तीन बच्चों की नदी में डूबने से मौत

आगर मालवा (मप्र) । मध्य प्रदेश के आगर मालवा जिले में दो भाई-बहनों समेत तीन बच्चों की नदी में डूबने से मौत हो गयी. पुलिस ने शनिवार को यह जानकारी दी. नलखेड़ा पुलिस थाने के प्रभारी शशि उपाध्याय ने बताया कि यह घटना शुक्रवार शाम जिला मुख्यालय से करीब 35 किलोमीटर दूर चल्दा गांव में हुई. पुलिस अधिकारी ने बताया कि परिवार के एक सदस्य की मृत्यु हो गई थी और अंतिम संस्कार के बाद कुछ महिलाएं लखुंदर नदी में स्नान करने गई थीं.

निर्दलीय विधायक की हार्ट अटैक से मौत

गुरुग्राम । बादशाहपुर विधानसभा क्षेत्र से निर्दलीय विधायक राकेश दौलताबाद की शनिवार सुबह दिल का दौरा पड़ने से मृत्यु हो गई. पुलिस ने यह जानकारी दी. पुलिस ने कहा कि 45 वर्षीय विधायक को सुबह दिल का दौरा पड़ा, जिसके बाद उन्हें एक निजी अस्पताल ले जाया गया. पुलिस के अनुसार यहां पालम विहार में मनिपाल अस्पताल में इलाज के दौरान उनकी मृत्यु हो गई. दौलताबाद ने 2019 के विस चुनाव में निर्दलीय उम्मीदवार के तौर पर जीत हासिल की थी.

मशहूर डायरेक्टर भारती का निधन

मुंबई । हिंदी सिनेमा के मशहूर फिल्म डायरेक्टर सिकंदर भारती का निधन हो गया. वो 60 साल के थे और 24 मई को मुंबई में उन्होंने अंतिम सांस ली. 25 मई को सुबह 11 बजे ओशिवारा शमशान घाट पर उनका अंतिम संस्कार किया गया. फिल्म जगत की कई बड़ी हस्तियां उनके अंतिम संस्कार में पहुंचीं. डायरेक्टर ने 'घर का चिराग', 'जालिम', 'रुपए दस करोड़', 'भाई भाई', 'सैनिक सिर उठा के जियो', 'दंडनायक', 'रंगीला राजा', 'पुलिस वाला' और 'दो फंटूश' जैसी फिल्में बनाई थीं.

यूक्रेन ने खार्किव क्षेत्र के इलाकों को वापस लिया

कीव । यूक्रेन के राष्ट्रपति वोलोदिमीर जेलेंस्की ने कहा है कि यूक्रेनी बलों ने पूर्वोत्तर खार्किव क्षेत्र के उन इलाकों में नियंत्रण हासिल कर लिया है,जहां रूसी सैनिकों ने इस महीने की शुरुआत में प्रवेश किया था. जेलेंस्की ने शुक्रवार शाम को अपने वीडियो संबोधन में कहा, हमारे सैनिक अब उस सीमा क्षेत्र में नियंत्रण लेने में सफल हो गए हैं जहां रूसी सैनिक घुस आए थे. जेलेंस्की का बयान रूसी अधिकारियों द्वारा की गई टिप्पणियों से भिन्न नजर आता है. रूसी सरकारी समाचार एजेंसी 'तास' की खबर के अनुसार रूस की संसद के निचले सदन के सदस्य विक्टर वोडोलात्स्की ने कहा कि रूसी सेना ने अब सीमा के अंदर तीन मील वोवचांस्क शहर के आधे से अधिक हिस्से पर नियंत्रण कर लिया है.

कैमरे की नजर में
लोकसभा चुनाव : 2024

प्रियंका गोरखपुर में इंडी गठबंधन की उम्मीदवार के समर्थन में बोलीं

परिवार के मुखिया को आंखों की शर्म नहीं खोनी चाहिए थी

एजेंसी ।गोरखपुर (उप्र)

कांग्रेस महासचिव प्रियंका गांधी वाद्रा ने शनिवार को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के बिहार में दिये गये भाषण पर तीखा पलटवार करते हुए कहा कि परिवार के मुखिया को कभी आंखों की शर्म नहीं खोनी चाहिए. गोरखपुर में सपा प्रमुख अखिलेश यादव की मौजूदगी में 'इंडिया' गठबंधन की गोरखपुर की उम्मीदवार काजल निषाद और बांसगांव संसदीय क्षेत्र के उम्मीदवार सदल प्रसाद के समर्थन में आयोजित चुनावी जनसभा को संबोधित करते हुए प्रियंका गांधी ने भोजपुरी में रऊवा सभे के राम-राम बोलकर भीड़ का अभिवादन किया. उन्होंने बिहार की एक चुनावी सभा में प्रधानमंत्री मोदी के दिये गये भाषण का जिक्र करते हुए कहा, मोदी जी ने बिहार में भाषण दिया और विपक्ष के नेताओं के लिए ऐसे-ऐसे शब्द बोले जो देश के इतिहास में किसी पीएम ने नहीं बोले होंगे. गांधी ने प्रसिद्ध संत बाबा गोरखनाथ की एक रचना मन में रहिबा, भेद न करिबा बोलबा अमृतवाणी...सुनाते हुए कहा, प्रधानमंत्री पद का पूरा देश आदर करता है, हम भी आदर करते हैं. उन्होंने जनता से सवाल करते हुए कहा, आपकी आस्था, आपकी आशाएं, मोदी जी से एक समय में जुड़ी थीं, लेकिन क्या पीएम की जिम्मेदारी नहीं बनती कि वह पद की गरिमा रखें, पद की मर्यादा रखें.

देश आपके परिवार समान है

कांग्रेस नेता ने तंज किया, आज जिस-जिस तरह से वह (मोदी) बोल रहे हैं, अफसोस की बात ये है कि उनकी असलियत दिखाई देने लगी है. प्रधानमंत्री को सीधे लक्ष्य करते हुए कांग्रेस महासचिव ने कहा, मोदी जी आप देश के प्रधानमंत्री हैं, इतनी भी अपनी असलियत मत दिखाइए. आपने देश को अपना परिवार कहा है, देश आपके परिवार समान है. नसीहत भरे अंदाज में प्रियंका ने कहा, परिवार का जो मुखिया होता है, हमेशा परिवार के सदस्यों की एक-दूसरे के प्रति आंखों की एक शर्म होती है, वह नहीं खोनी चाहिए, वह हमेशा रखनी चाहिए. उन्होंने आरोप लगाया, प्रधानमंत्री जी बौखलाहट में आ गए हैं. वह भूल गये हैं कि देश के प्रतिनिधि हैं, आपके प्रतिनिधि हैं और इस तरह के शब्द उनके मुंह से नहीं निकलने चाहिए. इससे पहले दिन में, पटना की एक चुनावी रैली में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने विपक्षी गठबंधन 'इंडिया' पर तीखा हमला किया और उस पर मुस्लिम वोट बैंक के लिए गुलामी और मुजरा करने का आरोप लगाया. कांग्रेस महासचिव ने दावा किया कि देश में आज 70 करोड़ लोग बेरोजगार हैं और 45 साल में सबसे ज्यादा आज देश में बेरोजगारी है, यह सबसे बड़ी समस्या है.

ध्यान भटकाने की राजनीति के खिलाफ वोट करे जनता : खरगे

नयी दिल्ली । कांग्रेस अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खरगे ने लोकसभा चुनाव के छठे चरण का मतदान आरंभ होने के बाद शनिवार को लोगों का आह्वान किया कि वे एकता, न्याय और रोजमर्रा के जरूरी मुद्दों पर तथा नफरत, जुमलों और ध्यान भटकाने की राजनीति के खिलाफ वोट करें. खरगे ने यह दावा भी किया की पांच चरणों के मतदान के बाद तानाशाह की कुर्सी डगमगा रही है इसलिए बौखलाहट के स्वर चरम पर हैं. लोकसभा चुनाव के छठे चरण में शनिवार को 58 सीट पर मतदान हो रहा है. खरगे ने 'एक्स' पर पोस्ट किया, मेरे प्रिय देशवासियों, लोकतंत्र और संविधान को सुरक्षित करने का ये संघर्ष अपने आख़िरी दो चरणों में आ गया है. आज छठे चरण का मतदान है और वोट जरूर देना है.

उन्होंने लोगों से अपील की, एकता, न्याय और रोजमर्रा के जरूरी मुद्दों पर वोट डालिए. नफ़रत, जुमलों और ध्यान भटकाने की राजनीति के ख़िलाफ़ वोट डालिए. खरगे ने कहा, क्या आपको न्याय संगत राजनीति नहीं चाहिये? ऐसी आर्थिक व सामाजिक सुरक्षा हो जिसमें युवा न्याय, किसान न्याय, नारी न्याय, श्रमिक न्याय और हिस्सेदारी न्याय के तहत हम एक प्रगतिशील व समावेशी भारत का निर्माण करें. अगर चाहिए तो ऐसे भारत के निर्माण के लिए वोट जरूर करें. उन्होंने कहा, याद रखिए आज ही का दिन है जब आप सालों से फैली भयावह बेरोजगारी व बेलगाम महंगाई को हरा पाएंगे. आज ही का दिन है जब आप दलितों, आदिवासियों व पिछड़े वर्गों के आरक्षण को सुरक्षित रख पाएंगे.

अखिलेश यादव ने देवरिया में जनसभा को संबोधित किया, बोले-

चार को भाजपा का सफाया हो जाएगा

एजेंसी ।देवरिया (उप्र)

समाजवादी पार्टी (सपा) के अध्यक्ष अखिलेश यादव ने शनिवार को दावा किया कि चार जून को जब मतगणना होगी तो उत्तर प्रदेश से भाजपा का सफाया हो जाएगा. यादव यहां देवरिया लोकसभा क्षेत्र से विपक्षी गठबंधन 'इंडिया' (इंडियन नेशनल डेवलेपमेंटल इन्क्लूसिव अलायंस) से कांग्रेस के उम्मीदवार अखिलेश प्रताप सिंह और कुशीनगर लोकसभा क्षेत्र से सपा उम्मीदवार अजय कुमार सिंह के समर्थन में एक संयुक्त चुनावी जनसभा को संबोधित कर रहे थे.

सपा प्रमुख ने जनता का उत्साह बढ़ाते हुए कहा कि जनता खुद चुनाव लड़ रही है और पहले चरण से ही जनता ने चुनाव अपने हाथ में ले लिया है. उन्होंने कहा इस बार उत्तर प्रदेश में जो हवा चली है, ये जो माहौल बना है और जिस तरह 'इंडिया' गठबंधन को समर्थन मिल रहा है, मुझे पूरा भरोसा है कि चार जून को भाजपा का उत्तर प्रदेश से सफाया होना तय है.

यादव ने यह भी दावा किया कि चार जून को मंत्रिमंडल तो बदलेगा ही, मीडिया मंडल भी बदलेगा. भाजपा पर चुनावी बाण्ड के नाम पर बड़े-बड़े उद्योगपतियों से चंदा वसूलने का आरोप लगाते हुए यादव ने दावा किया कि इसी वजह से देश में महंगाई बढ़ गयी क्योंकि जिन कंपनियों ने चंदा दिया उन्होंने मुनाफा कमाने के लिए महंगाई बढ़ाई. यादव ने परोक्ष रूप से प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी पर निशाना साधते हुए कहा कि यह चुनाव आने वाली पीढ़ी के भविष्य का चुनाव है और जो लोग मन की बात करते थे, जो मनमर्जी थे, उनसे कहना चाहते हैं कि अब मन की बात नहीं चलेगी, अब संविधान की बात चलेगी.

पुणे कार दुर्घटना : किशोर के दादा गिरफ्तार हुए

पुणे (महाराष्ट्र) । पुणे पुलिस ने पोर्श कार दुर्घटना में कथित तौर पर शामिल 17 वर्षीय लड़के के दादा को उनके परिवार के वाहन चालक को 'बंधक' बनाने के आरोप में गिरफ्तार किया है. एक अधिकारी ने शनिवार को बताया कि इस मामले में किशोर के पिता विशाल अग्रवाल पर भी मुकदमा दर्ज किया गया है. वह अभी कार दुर्घटना के संबंध में न्यायिक हिरासत में हैं. इससे एक दिन पहले, पुणे पुलिस प्रमुख अमितेश कुमार ने कहा था कि यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि कार किशोर नहीं चला रहा था.

उन्होंने बताया कि किशोर के परिवार के वाहन चालक की शिकायत पर यरवडा पुलिस ने किशोर के दादा और पिता के खिलाफ एक अलग मुकदमा दर्ज किया है. उन्होंने बताया कि दोनों पर मामला दर्ज किया गया है.

छत्तीसगढ़ की फैक्टरी में विस्फोट

एक व्यक्ति की मौत, कम से कम छह लोग घायल हुए

एजेंसी ।बेमेतरा

छत्तीसगढ़ के बेमेतरा जिले में शनिवार को विस्फोटक बनाने वाली एक फैक्टरी में विस्फोट से एक व्यक्ति की मौत हो गई और छह अन्य घायल हो गए. जिला प्रशासन के एक अधिकारी ने बताया कि विस्फोट बेरला विकासखंड के पिरदा गांव के पास स्थित विस्फोटक बनाने वाली फैक्टरी में हुआ. उन्होंने बताया कि सूचना मिलने के तुरंत बाद पुलिस और बचाव दल घटनास्थल पर पहुंचे. रायपुर के डॉक्टर भीमराव अंबेडकर अस्पताल की जनसंपर्क अधिकारी (पीआरओ) शुभ्रा सिंह ने बताया, विस्फोट में घायल हुए छह लोगों को इलाज के लिए डॉ बीआर अंबेडकर मेमोरियल अस्पताल रायपुर लाया गया है. जबकि एक व्यक्ति की मौत हो गई है. उन्होंने बताया कि घायलों का इलाज जारी है. घटनास्थल पर संवाददाताओं से बातचीत में बेमेतरा के जिलाधिकारी रणबीर शर्मा ने कहा कि घटनास्थल पर दमकल विभाग की टीम और राज्य आपदा प्रतिक्रिया बल (एसडीआरएफ) के जवान तैनात किए गए हैं. शर्मा ने बताया कि घटनास्थल से मलबा साफ होने के तीन-चार घंटे बाद स्थिति स्पष्ट होगी. उन्होंने बताया कि छह घायलों को इलाज के लिए रायपुर भेजा गया है. कुछ प्रत्यक्षदर्शियों ने स्थानीय समाचार चैनलों को बताया कि विस्फोट के समय फैक्टरी में कम से कम 100 लोग काम कर रहे थे, तथा कई लोग लापता हैं.

नासा भारतीय अंतरिक्ष यात्रियों को आधुनिक प्रशिक्षण देगी : गार्सेटी

वाशिंगटन । अमेरिका के शीर्ष राजनयिक एरिक गार्सेटी ने कहा कि अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष केंद्र के लिए संयुक्त प्रयासों को बढ़ाने के उद्देश्य से भारतीय अंतरिक्ष यात्रियों को जल्द ही आधुनिक प्रशिक्षण मुहैया कराएगी. भारत में अमेरिका के राजदूत गार्सेटी ने अमेरिका-भारत वाणिज्यिक अंतरिक्ष सम्मेलन : अमेरिका और भारतीय अंतरिक्ष स्टार्टअप के लिए अवसरों की शुरुआत कार्यक्रम में ये टिप्पणियां की. इस कार्यक्रम का आयोजन बेंगलुरु में यूएस-इंडिया बिजनेस काउंसिल और यूएस कमर्शियल सर्विस ने किया है. यूएसआईबीसी ने यहां जारी एक बयान में गार्सेटी के हवाले से कहा, नासा अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष केंद्र के लिए संयुक्त प्रयास बढ़ाने के उद्देश्य से जल्द ही भारतीय अंतरिक्ष यात्रियों को आधुनिक प्रशिक्षण मुहैया कराएगी.

हमीरपुर में गरजे अमित शाह, बोले

पाक के कब्जे वाला कश्मीर हमारा है, हम उसे लेकर रहेंगे

एजेंसी ।शिमला

केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने शनिवार को कहा कि पाकिस्तान के कब्जे वाला कश्मीर (पीओके)भारत का हिस्सा है और हम उसे लेकर रहेंगे. उन्होंने पड़ोसी देश के पास परमाणु बम होने संबंधी बयान को लेकर कांग्रेस पर निशाना साधा. शाह ने हमीरपुर लोकसभा सीट से भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के प्रत्याशी व केंद्रीय मंत्री अनुराग ठाकुर के समर्थन में ऊना जिले के अम्ब में एक रैली में कहा, पाकिस्तान के कब्जे वाला कश्मीर हमारा है, हमारा रहेगा और हम इसे लेकर रहेंगे. उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने लोकसभा चुनाव के पहले पांच चरणों में 310 सीटें जीत ली हैं और छठे तथा आखिरी चरणों के चुनाव में 400 पार का लक्ष्य हासिल कर लिया जाएगा जबकि कांग्रेस नेता राहुल गांधी 40 सीटों तक सीमित रहेंगे. शाह ने रैली में लोगों से यह पूछकर कांग्रेस पर निशाना साधा कि अगर वह सत्ता में आती है तो प्रधानमंत्री कौन होगा. उन्होंने राज्य में भाजपा की सरकार बनाने के लिए छह विधानसभा सीटों पर उपचुनाव में भाजपा को विजयी बनाने और '400-पार' का लक्ष्य हासिल करने में मदद करने की अपील की.

राजकोट के टीआरपी गेमिंग जोन में भयंकर आग से 24 की मौत

राजकोट। गुजरात में राजकोट के टीआरपी गेमिंग जोन में भयंकर आग लगने से मरने वालों की संख्या बढ़कर 24 हो गई है. दोपहर में लगी आग पर काबू पा लिया गया. ये घटना शनिवार की है और राजकोट के पुलिस कमिश्नर ने कहा कि हम इसकी जांच कर रहे है कि आग के पीछे की वजह क्या है. इसके साथ ही उन्होंने कहा कि शहर के सभी गेमिंग जोन को बंद करने का मैसेज जारी किया गया है. इस घटना पर पीएम नरेंद्र मोदी ने कहा, राजकोट में आग लगने की घटना से बेहद व्यथित हूं. मेरी संवेदनाएं उन सभी के साथ हैं, जिन्होंने अपने प्रियजनों को खोया है. घायलों के लिए प्रार्थना करता हूं. स्थानीय प्रशासन पीड़ितों को हर संभव सहायता प्रदान करने के लिए काम कर रहा है. शव इस हद तक जल गए कि उनकी पहचान करना मुश्किल हो गया.

मुख्य निर्वाचन आयुक्त बोले

जम्मू-कश्मीर में विस चुनाव प्रक्रिया जल्द शुरू होगी

एजेंसी ।नयी दिल्ली

मुख्य निर्वाचन आयुक्त (सीईसी) राजीव कुमार ने शनिवार को कहा कि जम्मू-कश्मीर में लोकसभा चुनाव में मतदान प्रतिशत से उत्साहित निर्वाचन आयोग बहुत जल्द केंद्र शासित प्रदेश में विधानसभा चुनाव कराने की प्रक्रिया शुरू करेगा. उन्होंने 'पीटीआई-वीडियो' से यह भी कहा कि जम्मू-कश्मीर के लोग अपनी सरकार पाने के हकदार हैं. जम्मू-कश्मीर की विभिन्न सीट पर मतदान प्रतिशत और विधानसभा चुनाव के बारे में पूछे गये सवाल का जवाब देते हुए कुमार ने कहा कि संसदीय चुनावों में लोगों की भागीदारी से निर्वाचन आयोग बहुत उत्साहित है. उन्होंने कहा, लोग युवा, महिलाएं खुशी-खुशी बड़ी संख्या में (मतदान के लिए) निकल रहे हैं. लोकतंत्र की जड़ें और मजबूत हो रही हैं, लोग भाग ले रहे हैं. मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने कहा, वे अपनी सरकार पाने के हकदार हैं. हम बहुत जल्द ही वह प्रक्रिया शुरू करेंगे. ऐसा करने के लिए बहुत उत्साहित हूं. मार्च में लोकसभा चुनाव के कार्यक्रम की घोषणा करते हुए, कुमार ने कहा था कि विधानसभा और संसदीय चुनाव एक साथ कराना साजो-सामान और सुरक्षा कारणों से व्यावहारिक नहीं है. जम्मू-कश्मीर में चुनावी प्रक्रिया आमतौर पर एक महीने तक चलती है. परिसीमन की कवायद के बाद पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर (पीओके) को आवंटित सीट को छोड़कर, विधानसभा सीट की संख्या 83 से बढ़कर 90 हो गई है. उच्चतम न्यायालय ने दिसंबर में निर्वाचन आयोग को 30 सितंबर तक जम्मू-कश्मीर में विधानसभा चुनाव कराने का निर्देश दिया था.

कान फिल्म महोत्सव | फिल्म शेमलेस के प्रमुख कलाकारों में से अनसुया सेनगुप्ता ने रचा इतिहास

अनसर्टेन रिगार्ड श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार जीता

एजेंसी ।कान (फ्रांस)

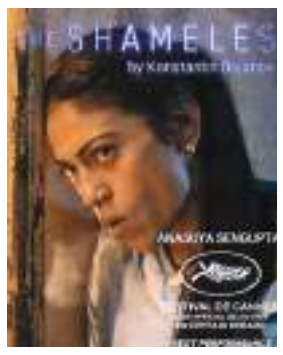

बुल्गारिया के निर्देशक कॉन्स्टांटिन बोजानोव की हिंदी भाषी फिल्म द शेमलेस के प्रमुख कलाकारों में से एक अनसुया सेनगुप्ता ने 2024 के कान फिल्म महोत्सव में अनसर्टेन रिगार्ड श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार जीतकर इतिहास रच दिया है. कोलकाता की रहने वाली सेनगुप्ता इस श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार जीतने वाली पहली भारतीय हैं.

यह इस प्रतिष्ठित फिल्म महोत्सव में भारत के लिए एक अहम उपलब्धि है. कान महोत्सव का समापन शनिवार को हो गया. पुरस्कार लेते हुए शुक्रवार रात को सेनगुप्ता ने इसे दुनियाभर में अपने अधिकारों के वास्ते बहादुरी से लड़ने के लिए समलैंगिक समुदाय और अन्य वंचित समुदायों को समर्पित किया. उन्होंने कहा, समानता के लिए लड़ने के लिए आपको समलैंगिक होने की जरूरत नहीं है- हमें बस बहुत, बहुत सभ्य इंसान बनने की जरूरत है.

'द शेमलेस' का 17 मई को कान में सर्वप्रथम प्रदर्शित किया गया था. शोषण और दुख की अंधेरी दुनिया को दिखाने वाली यह फिल्म दो यौन कर्मियों की कहानी है जो अपनी बेड़ियां तोड़ना चाहती हैं. इसमें सेनगुप्ता ने रेणुका का किरदार निभाया है जो एक पुलिसकर्मी की हत्या करने के बाद दिल्ली के एक वेश्यालय से भाग जाती है और उत्तर भारत में यौन कर्मियों के एक समुदाय के बीच रहने लग जाती है जहां उसकी मुलाकात देविका (ओमारा) से होती है. ब्रिटिश-भारतीय फिल्मकार संध्या सुरी की फिल्म संतोष को भी इस श्रेणी में नामांकित किया गया था लेकिन उसे कोई पुरस्कार नहीं मिल पाया. अन सर्टेन रिगार्ड श्रेणी का उद्देश्य सिनेमा के नए चलन, नए रास्तों और नए देशों को उजागर करना है. इस श्रेणी का शीर्ष पुरस्कार चीनी फिल्म निर्माता गोउ झेन की ब्लैक डॉग को मिला है.

पूर्व सांसद रेवती रमण सिंह को पुलिस ने हिरासत में लिया

प्रयागराज (उप्र) । लोकसभा चुनाव के छठे चरण के मतदान के दौरान प्रयागराज के करेली में शनिवार की दोपहर एक मतदान स्थल पर सहायक पुलिस आयुक्त पुष्कर वर्मा के साथ नोंकझोंक के बाद पूर्व सांसद और सपा के वरिष्ठ नेता रेवती रमण सिंह को पुलिस ने हिरासत में ले लिया. पुलिस उन्हें करेली थाने ले गई. इलाहाबाद सीट से कांग्रेस प्रत्याशी उज्जवल रमण सिंह के पिता रेवती रमण सिंह को पुलिस हिरासत में लिए जाने के बाद सपा और कांग्रेस के कई नेता और कार्यकर्ता थाने के बाहर एकत्रित हो गए. पुलिस के एक अधिकारी ने बताया की कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए पीएसी कर्मियों को भी थाने के आसपास तैनात किया गया है.

निष्पक्ष चुनाव हुआ तो भाजपा सत्ता से बाहर होगी : मायावती

एजेंसी ।गोरखपुर (उप्र)

पूर्व मुख्यमंत्री मायावती ने शनिवार को दावा किया कि अगर स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव हुआ तो भाजपा और उनके सहयोगी सत्ता से बाहर हो जाएंगे. बसपा प्रमुख मायावती ने गोरखपुर लोकसभा क्षेत्र के बसपा उम्मीदवार जावेद सिमनानी के समर्थन में आयोजित चुनावी रैली में कहा, जैसे लंबे समय तक सत्ता में रही कांग्रेस अपनी गलत नीतियों के कारण देश और राज्यों में सत्ता से बाहर हो गयी, उसी तरह भाजपा भी सत्ता से बाहर हो जाएगी बशर्ते निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव हो और वोटिंग मशीन में कोई गड़बड़ी न हो. मायावती ने समाजवादी पार्टी पर भी निशाना साधते हुए कहा कि उसने बसपा सरकार में बहुजन नेताओं के नाम पर रखे गए जिलों के नाम बदल दिए. उन्होंने कहा, जब सपा सत्ता में थी तो उसने उन जिलों और संस्थानों के नाम बदल दिए जो हमने अपने संतों और गुरुओं के नाम पर बनाए थे. इससे इन संतों और गुरुओं के प्रति उनकी (सपा की) बुरी मंशा का पता चलता है.

मुद्रक तथा प्रकाशक लगातार इंफोटेनमेंट प्राइवेट लिमिटेड द्वारा लगातार इंफोटेनमेंट प्राइवेट लिमिटेड के पक्ष में, सिमलिया, रिंग रोड, पीएस-रातू, रांची - 835222 से मुद्रित तथा 304-305 समृद्धि स्क्वायर, किशोरगंज चौक, हरमू रोड, रांची- 834001, झारखंड द्वारा प्रकाशित.
संपादक - **सुरजीत सिंह**, स्थानीय संपादक - **संजय सिंह***. फोन नंबर- 0651-2961734 आर.एन.आई. नंबर - **JHAHIN/2023/84487** (*पीआरबी अधिनियम के तहत खबरों के चयन के लिए जिम्मेदार.)